श्रीहरिः ॥

आश्वमेधिकमन्त्रमीमांसा

अश्वमेध सम्बन्धी जिन मन्त्रोंपर
वर्त्तमान आर्यसमाजी आक्षेप
करते हैं उनका युक्तियुक्त
समाधान ॥

पण्डित भीमसेनशर्मा रचित

Printed and Published by Pandit
Brahmdeo Sharma at the Brahm
Press ETAWAH.

प्रथम वार १००० } संवत् १९६७ सन् १९११ { मूल्य =) डा०)॥

मिलनेका पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा

पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस—इटावा ॥

आश्वमेधिकमन्त्रमीमांसा [illegible]

यहां वक्तव्य यह है कि हमारे अनेक पाठकोंको ज्ञात होगा कि (गणानांत्वा०) से लेकर यजुर्वेद अ० २३ में १३ कण्डिका और १७ मन्त्र ऐसे हैं जिन पर विचार लिखते हुए स्वा० दयानन्द जी ने वेदभाष्यकार पं० महीधर जी को नीच तथा वाममार्गी लिखा है। आर्यसमाजी लोग इस बात पर अब तक बासों उछलते कूदते हैं कि महीधर के भाष्यमें जो दोष स्वा० द० ने दिखाये थे वे दोष सब सनातनधर्मी लोगों पर इस लिये आते हैं कि सनातनधर्मी हिन्दु लोग महीधर के भाष्यको अच्छा मानते हैं। और वह महीधरका भाष्य ऐसा बुरा है कि जिसे कोई भी अच्छा नहीं मान सकता। इस बातको प्रकाशित करते २ अनुमान तीस वर्ष हो गये पर आज तक किसी भी सनातनधर्मी विद्वान्ने महीधर तथा सनातनधर्मी हिन्दुओं को इस दोषसे मुक्त करनेके लिये कलम नहीं उठायी, इससे आ० समाजियोंने मान लिया था कि अब इसका

समाधान कोई नहीं कर सकता। इस लिये बड़े हर्षकी बात है कि आज शुभ मुहूर्त्त में अश्वमेध यज्ञ संबन्धी उक्त वेद मन्त्रों पर पूरा २ विचार लिखने छपाने का आरंभ हुआ है। वेदभाष्यकार पं० महीधरजीने जैसा अर्थ वेदका किया है वही अभिप्राय शतपथ ब्राह्मणसे भी सिद्ध है और कात्यायन श्रौत नामक कल्प सूत्रोंका भी वही अभिप्राय है इसी विचारसे सनातन धर्मी लोग महीधर भाष्यको ठीक मानते हैं। इसी लिये सबका समाधान किया जायगा॥

आश्वमेधिक

मन्त्रमीमांसा ।

गणानां त्वा गणपतिᳬं हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳬं हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिᳬं हवामहे, वसो मम । २३ । १९

अ०—हे वसो ! वसन्ति सर्वभूतान्यस्मिन्स वसुर्वासुदेवः सूर्यात्मकः परमात्मा तत्संबुद्धौ हे वसो ! गणानां मध्ये गणपतिं त्वां हवामहे प्रियाणां मध्ये प्रियपतिं त्वां हवामहे निधीनां मध्ये निधिपतिं त्वां हवामहे आह्वयामः त्वं मम पतिः पालको रक्षको भव ॥ १ ॥

भाषार्थः--हे (वसो) जिस दिव्यादि भेद भिन्न प्राणरूप सूर्यात्मक वासुदेव भगवान्में ओत प्रोत हुए सब प्राणी वसते हैं। हे ऐसे वसुनामक परमात्मन्! (गणानां त्वा गणपतिं हवामहे) देव मनुष्यादिमें जितने गण हैं उन सब समुदायोंमें गणपति नाम अधिष्ठाता रूपसे विद्यमान तुमको हम लोग पुकारते हैं (प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे) संसारके प्रिय पदार्थोंके बीच प्रियपति रूप आपको हम पुकारते हैं और (निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे) धर्मादिके खजानोंके बीच उन २ खजानोंके पति रूपसे विद्यमान आपको हम पुकारते हैं। हे वसो! वासुदेव! आदित्यात्मक परमात्मन्! (मम) मेरे पति नाम रक्षक तुम ही हो॥

भावार्थ--इस मन्त्रका तात्पर्य यह है कि जो ईश्वर भगवान् सब जगत् में असंख्य नाम रूपोंसे ओत प्रोत है वही सबका पति वा रक्षक है। उसी को रक्षक जानना मानना भी एक प्रकारकी पूजा वा उपासना है। सभी समुदायोंमें कोई न कोई मुखिया माना जाता है वही उनका रक्षक वा पति है उसीको हेड कहतेहैं,

समुदायका स्वामी ही राजा वा ईश्वर कहाता है, इसी अभिप्रायसे राजा भी ईश्वरका ही एक रूप माना गया है, गणपतियोंके रूप में ईश्वरको विद्यमान देखो मानो, स्त्री के लिये प्रियोंके बीच प्रियपति उस का निज स्वामी है उसे वह ईश्वर भावनासे माने। जैसे धर्म कोषका रक्षक ब्राह्मण है तो बड़े धर्मात्माको नाम एक प्रकारके धर्मरूपी निधिके पति ब्राह्मणको ईश्वर भावनासे माने पूजा भक्ति करे। चाहें यों कहो कि गणपति नाम सत्, प्रियपति नाम चित् और निधिपति नाम आनन्द स्वरूपकी पूजा भक्ति उपासना इस मन्त्रने दिखायी है। इत्यादि सामान्य मन्त्रार्थ है विशेष विचार आगे देखिये—

अश्वं त्रिस्त्रिः पर्यन्ति पितृवन्मध्ये गणानां प्रियाणां निधीनामिति॥ [कातीयश्रौतसू० २०।६।१३] महीधरभाष्यम् सर्वाः पत्न्यः पात्नेजनहस्ता एव प्राणशोधनात्प्राक् अश्वं त्रिस्त्रिः पर्यन्ति मध्ये पितृ-

वत्–अप्रदक्षिणं पर्यन्ति । त्रिः त्रिभिर्मन्त्रैः वसो ममेति त्रिष्वप्यनुषङ्गः । ततश्चैवं प्रथमं गणानामिति त्रिः प्रदक्षिणं पर्यन्ति तत्र सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्, ततः प्रियाणामित्यप्रदक्षिणं त्रिः, निधीनामिति प्रदक्षिणं त्रिः–एवं नवकृत्व इति सूत्रार्थः, त्रीणि यजूंषि लिङ्गोक्तदेवत्यानि ॥

भाषार्थ–यद्यपि कल्पसूत्रोंमें किये विनियोग सूत्रों के अनुसार १३ कण्डिकाओं में १५ मन्त्र ही होते हैं तथापि (गणानांत्वा०) इस कण्डिका में एक सूत्रसे तीन मन्त्रोंका विनियोग दिखानेके कारण यहां १७ सत्रह मन्त्र संख्या जानो परन्तु १५ वा १७ दोनों दशा में कण्डिका सब १३ ही मानी जावेंगी । श्रौत कल्प सूत्र का अभिप्राय महीधर वेदभाष्यकार ने यह दिखाया है कि पात्नेजन नामक यज्ञ संबन्धी यजमानकी पत्नियोंका एक जलपात्र विशेष जिनके हाथमें हो ऐसी यजमानकी एक वा अनेक [जितनी विवाहित स्त्रियां

हों] पत्नी [यजुः संहिता अ० ६ कण्डिका १४ में] कहे प्राणशोधन कर्मसे पहिले (गणानां०) इत्यादि तीन मन्त्रोंमें से प्रत्येक मन्त्रसे अश्वकी तीन २ परिक्रमा करें। बीच के मन्त्र से पितृवत् नाम अप्रदक्षिणा उलटी तीन परिक्रमा करें अन्तमें पढ़े (वसोमम) मन्त्रांशको तीनों मन्त्रोंके अन्तमें लगावें। प्रथम (गणानां०) मन्त्र पढ़ के एक प्रदक्षिणा परिक्रमा तथा दो परिक्रमा विना मन्त्रसे तूष्णीं करें। तदनन्तर (प्रियाणां०) मन्त्रसे उक्त प्रकार अप्रदक्षिणा तीन परिक्रमा करें और उक्त रीत्य-नुसार (निधीनां०) मन्त्रसे तीन परिक्रमा प्रदक्षिणा करें इस प्रकार तीन मन्त्रोंसे राजपत्नी मृत अश्वशरीर रूप भगवन् मूर्त्तिकी नौ परिक्रमा करें उन तीन निम्न मन्त्रोंको आगे लिखी रीतिसे राजपत्नी वा उनके प्र-तिनिधि [वकील] पण्डित ऋत्विज् लोग अश्वमेध यज्ञ में पढ़ें—

ओं-गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे वसो मम ॥१॥ ओं-प्रियाणां त्वा प्रि-

यपतिꣳ हवामहे वसो मम ॥२॥ ओं निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रोंसे अश्वरूप भगवन् मूर्त्तिकी नौ परिक्रमा करें। हमारे सब पाठकोंको ध्यान रखना चाहिये कि यहां अश्वमेध यज्ञके प्रकरणमें अश्व शरीर रूप विष्णु भगवान्की एक मूर्त्ति है और ये नौ परिक्रमा करना उस मूर्त्तिकी पूजा है वा मूर्त्तिके द्वारा मूर्त्तिमान् भगवान्की पूजा है क्योंकि षोडशोपचार पूजनमें लिखा है कि—

धूपंदीपंचनैवेद्यं नमस्कारंप्रदक्षिणाम् ।
उद्वासनंषोडशकमेवंदेवार्चनेविधिः ॥१॥

इस नागदेवोक्त प्रमाणमें प्रदक्षिणाका नाम भी देवपूजा स्पष्ट कहा है उक्त तीन मन्त्रों द्वारा गणपति, प्रियपति और निधिपति नाम रूपोंसे गणेशादि रूप भगवान्की स्तुति प्रार्थना, नमस्कार ध्यानादि भी एक प्रचार के पूजन हैं। जहां देव बुद्धिसे पूजा उपासना

का भाव मन्त्र ब्राह्मण और कल्पके द्वारा वेदभाष्यकार महीधर जी दिखा रहे हैं वहां जिन स्वा० दयानन्दादि लोगोंको घोड़के साथ राजपत्नीके मैथुन कराने का एक महानिन्दित विचार सूझ पड़ा यह केवल मलिन संस्कारों का दोष है। शुद्ध संस्कारी पुरुष के मनमें ऐसे निकृष्ट विचार स्फुरित नहीं हो सकते हैं॥ (गणानां-त्वा०) इत्यादि तीन मन्त्रों पर शतपथ ब्रा० १३।२।२।४॥

गणानांत्वागणपतिᳫंहवामहइति प-त्न्यः पर्यन्त्यपन्हुवतऽएवाऽस्माऽएतदतोऽ-न्येवास्मै न्हुवतेऽथो धुवतऽएवैनं त्रिः प रियन्ति त्रयो वाऽइमे लोकाएभिरेवैनं लो-कैर्धुवते त्रिः पुनःपरियन्ति षट् सम्पद्यन्ते षड्वाऽऋतवऋतुभिरेवैनं धुवते ॥४॥ अ-पवाऽएतेभ्यः प्राणाः क्रामन्ति ये यज्ञे धु-वनं तन्वते नवकृत्वः परियन्ति नव वै प्राणाः प्राणानेवात्मन्धत्ते नैभ्यः प्राणा अपक्रामन्ति॥

भा०-इन शतपथ श्रुतियोंका ठीक वही अभिप्राय है कि जो ऊपर महीधरभाष्यकी भाषामें दिखाया गया है। उसमें इतना विशेष है कि जो पत्नी अश्वकी परिक्रमा करतीं हैं उस वेदोक्त क्रियाके प्रभावसे अश्व अन्य लोगोंको नहीं दीखता अर्थात् अन्तर्धान हो जाता है। तदनन्तर राजपत्नियां उस अश्वको हिलाती हैं। राजपत्नी तीन परिक्रमा के द्वारा अश्वको तीनों लोकोंके साथ प्रत्यक्ष चेष्टा कराती हैं दूसरे तीन परिक्रमा से छः परिक्रमारूप छः ऋतुओं के साथ सूर्यात्मना-विद्यमान अश्वको चेष्टा युक्त करती हैं। उन लोगोंका प्राणबल घटता वा नष्ट हो जाता है कि जो यज्ञमें मर्यादासे अधिक अनुचित चेष्टा करते हैं। इसलिये राजपत्नियोंको चाहिये कि मन वाणी और शरीरको संयममें रखती हुईं अनुचित चेष्टा कुछ भी न करें। केवल नौवार परिक्रमा करें उसका अभिप्राय यह है कि इस शरीररूप नगरमें नौ दर्वाजे हैं इन नौ परिक्रमाके द्वारा शरीरके नौ दर्वाजोंको धर्मानुकूल नियम में रखना अर्थात् जितेन्द्रिय होना दि-

खाया है। क्योंकि काम क्रोध लोभमें फंसा वा धृत्या-
दि धर्मके लक्षणोंसे च्युत हुआ मनुष्य कदापि यज्ञ का
अधिकारी नहीं हो सकता। मनुजीका कथन है कि-अ०२

वेदास्त्यागश्चयज्ञाश्च नियमाश्चतपांसिच।
नविप्रदुष्टभावस्य सिद्धिंगच्छन्तिकर्हिचित्॥

वेदाध्ययन, संन्यास, अश्वमेधादि यज्ञ, नियम और
तप ये सब दूषित हृदय वाले पुरुषको सिद्ध नाम सफल
नहीं होते। सब शास्त्रोंकी सम्मत्यनुसार मुख्य दोष
काम क्रोध लोभ हैं, जबतक काम क्रोध लोभ मोहोंसे
न बचे तबतक ब्राह्मणादि द्विज भी यज्ञका अधिकारी
नहीं हो सक्ता॥

शतपथ ब्रा० में काण्ड तीनके आरम्भसे अग्निष्टोम
यज्ञका विस्तारपूर्वक व्याख्यान किया है। सब बड़े
यज्ञोंकी प्रकृति नाम मूल अग्निष्टोम यज्ञ है। सब य-
ज्ञोंमें पहिले यजमानको और उस यजमानकी पत्नीको
विधिपूर्वक दीक्षित बनाया जाता है उसी दीक्षा कर्म
में दीक्षणीया इष्टि भी की जाती है। शतपथ ब्रा०
काण्ड ३ के प्रारम्भके छः ब्राह्मणोंकी १५४ कण्डिकाओं

में यजमान तथा पत्नीको दीक्षित करनेका विचार दिखाया है। इसमें स्पष्टरूपसे काम क्रोधादिको सर्वथा परित्याग करनेका नियम करदिया है। विस्तारभय से हम दीक्षित यजमान पत्नियोंके नियम यहां नहीं लिखते केवल पता लिखदिया है यह भी निश्चित विचार है कि अग्निष्टोम यज्ञमें दीक्षितके लिये जो नियम हैं वे ही नियम यहां अश्वमेधमें भी लिये जावेंगे। इस से सिद्ध हुआ कि अश्वमेधादि सभी यज्ञोंमें काम क्रोध लोभका सर्वथा निषेध है॥

जब काम क्रोधादिके त्यागका उपदेश सब यज्ञोंमें वेदसे ही सिद्ध है और काम वासना के जागे विना राजपत्नीका घोड़ादिके साथ मैथुन हो ही नहीं सकता तब जो लोग घोड़ाके साथ राजपत्नीका मैथुन कराना अश्वमेध यज्ञमें समझ बैठे हैं यह उन लोगोंकी सरासर वेसमझी है। इसलिये यदि वे लोग वास्तवमें सत्य के ग्राही हैं तो निष्पक्ष विचारसे लिखे हमारे इस अभिप्रायको स्वीकार करें। जब कामवासनाको लेकर कुछ भी बात अश्वमेधमें नहीं तब अन्य जो २ अभिप्राय

मन्त्र ब्राह्मण और कल्पका है उसी अभिप्रायको लेकर वेदभाष्यकार महीधरने भाष्य किया है उसी अभिप्रायको हम देवनागरी भाषामें प्रकाशित करेंगे। परन्तु सब पाठक लोग कामकी वासनासे चित्तको हटाकर इस विषयको सावधान चित्तसे देखेंगे तब ठीक समझमें आवेगा॥

आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्॥

प्रक्षालितेषु महिष्यश्वमुपसंविशत्याहमजानीति॥ कातीयश्रौतकल्पसूत्र॥२०।६। १९

प्रक्षालितेषु शोधितेषु पशूनां प्राणेषु पत्नीभिरध्वर्युणा यजमानेन प्राणशोधने कृते महिषी अश्वसमीपे शेते॥

तथा शतपथे—आहमजानि गर्भधमात्वमजासिगर्भधमिति प्रजा वै पशवो गर्भः प्रजामेव पशूनात्मन्धत्ते॥ १३। २। २।५॥

भा०—पत्नी अध्वर्यु यजमान ये तीनों जब पशुओं के प्राणात्मक शरीर के छिद्रोंको [यजुः संहिता अ० ६ । १४ में लिखे अनुसार] शुद्ध कर चुकें तब जिसके साथमें राजगद्दी हुई हो वह प्रधान मुख्य राजपत्नी मृतशरीर अश्वके समीप लेट जावे । और (आहमजा-नि०) मन्त्र पढ़ती हुई परमेश्वरसे प्रार्थना करे कि हे अश्वनामरूपात्मक सूर्यनारायण ! सर्वप्रेरक सर्वान्तर्या-मिन् ईश्वर ! राजाके आधीन रहनेसे पशुओंके तुल्य पराधीन, गर्भके तुल्य रक्षा करने योग्य, प्रजानामक (गर्भधम्) गर्भको धारण करने वाले अमृतरूप अंश को (अहम्) मैं आ-अजानि तुम सूर्यनारायणसे ले-कर अपने हृदयमें धारण करती हूं और (त्वम्) तुम (गर्भधम्) प्रजाके धारक पोषक अमृतांशको (आ-अ-जासि) अच्छे प्रकार मुझमें धारण करो । सारांश यह है कि स्त्री पुरुष का तादात्म्य सम्बन्ध है राजपत्नी जो प्रार्थना करती है वह राजाके ही मुख्य कर्त्तव्यकी सिद्धि चाहती है । अश्वमेध यज्ञ करना क्षत्रिय राजा का ही काम है यह बात वेदादि शास्त्रोंके अनेक प्र-

मार्गोंसे सम्यक् सिद्ध है । वेदके सिद्धान्तानुसार जिस मनुष्यने अपने परमधर्मकी रक्षा वा प्राप्ति करली उस ने मानो सभी कुछ प्राप्त कर लिया, और जिसका धर्म गया उसका मानो सभी नाश हो गया । इसके अनुसार वेदने क्षत्रिय राजाको प्रजाकी रक्षा करना ही मुख्य कर्त्तव्य बतलाया है और प्रजाकी रक्षा नाम स्थिति वा पुष्टिका वा जीवनका मुख्य हेतु सूर्यका सम्बन्धी अमृत चन्द्रमा है उस चन्द्रमाके जीवन हेतु रोग दोष नाशक अमृतांशकी प्रार्थना राजपत्नी सूर्यात्मक भगवान्से अश्व मूर्त्ति द्वारा प्रजा रक्षार्थ करती है ॥

इसी प्रकारके वेदाशयको लेकर मनुजीने कहा है कि—

क्षत्रियस्यपरोधर्मः प्रजानामेवपालनम्।अ०७।

क्षत्रिय राजाका परमधर्म प्रजाकी रक्षा करना ही है। इसी अभिप्रायसे शतपथ ब्रा० में ऊपर पशुवत् पराधीन तथा रक्षा करने योग्य प्रजाका ही नाम गर्भ लिखा है। उस प्रजाका पालन पोषण करने वाला अंश ही अमृत कहाता है वह निर्लोभ वा संतोषादि अनेक रूपोंसे संसारमें विद्यमान है। उस अमृत अंशका अ-

धिष्ठाता सूर्यनारायण है। राजा अधिक लोभ करके प्रजा से धन न खींचे किन्तु इतना उचित कर लगावे कि जिससे प्रजा हृष्ट पुष्ट बनी रहे तब प्रजाके सुखी रहनेसे राजाका राज्य अटल हो जाता है॥

यदि कोई आ० समाजी महाशय कहें कि स्वा० दयानन्दने जैसा राजधर्म संबन्धी अर्थ इन मन्त्रों का किया था वैसा ही तुमने किया तो उत्तर यह है कि थोड़ा आंख खोलकर देखो, स्वा० दयानन्दने अश्वमेध यज्ञका सभी विधान उड़ाके राज्य करने का नाम ही अश्वमेध रख लिया था जैसे कोई कहे कि अच्छा २ भोजन वस्त्रादि जिस तरह प्राप्त हो वही धर्म कर्म है तो यह कथन नास्तिकोंका माना जायगा। वैसे स्वा० दयानन्दने अश्वमेधयज्ञ का वेदोक्त विधान उड़ाकर नास्तिकता दिखादी है परन्तु हमने मन्त्र ब्राह्मण और कल्पसूत्रानुसार वेदभाष्यकार महीधरके दिखाये अश्वमेधयज्ञके विधानका क्रम यथावत् रखते मानते हुए यज्ञविधिके साथ वेदका अभिप्राय यथावत् खोल कर दिखा दिया है। इससे हमारा अर्थ स्वा० द० के अर्थसे

बहुत विलक्षण है। यदि किसी अंशमें स्वा० द० के अर्थसे हमारा अर्थ मिलता हो तो जैसे आस्तिक नास्तिक दोनों ही आंखोंसे देखनेमें तुल्य होने पर भी नास्तिक आस्तिक नहीं बनजाता वैसेही यहां भी जानो ॥

अश्वरूप मूर्त्तिके द्वारा सूर्यनारायणरूप विष्णु भगवान्का पूजन अश्वमेधयज्ञमें वेद भगवान्ने क्यों कहा? इसका विचार सुनिये-इस अ० २३ की १३ कण्डिकाओं पर विशेष विवाद है। इसी अ० २३ की ६१। ६२ कण्डिकाओं को आंख खोलकर प्रथम देखना चाहिये वहां (पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः) मन्त्रमें यजमान अध्वर्युसे पूछता है कि इसी अ० २३ की २० कण्डिका में कहा वृषा वाजी वा अश्वका रेत क्या चीज है? सो मैं पूछता हूं। इसके उत्तरमें कण्डिका ६२ में स्पष्टरूपसे उत्तर दिया गया है कि=

अयꣳ सोमो वृष्णोऽअश्वस्य रेतः ॥

भा०—यद्यपि महीधरकृत वेद भाष्यमें ऐसा लिखा है कि—

वृष्णोऽश्वस्य रेतः अयं सोमः सोमलताऽश्वस्य वीर्याज्जातेत्यर्थः।

वृष अश्वका यह सोमलता ही रेतनाम वीर्य है अर्थात् अश्वके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। तथापि मृत्युलोक में पांच महाभूतोंसे बना जो घोड़ा रूप पशु शरीर है उसके वीर्यसे सोमलता भी पैदा नहीं होती क्योंकि यह प्रत्यक्ष से विरुद्ध है इस कारण महीधरका अभिप्राय यह नहीं है कि इस घोड़ेके वीर्यसे सोमलता होती है किन्तु अभिप्राय यही है कि वृषा नाम वर्षा करने वाला अश्वनाम आशु–शीघ्रगामी सूर्यतत्त्वका रेतनाम वीर्य यह सोम नाम प्रत्यक्ष चन्द्रमा है इसी चन्द्रमा के अमृतरूप अंश से यह सोमलता भी पैदा होती है। वेदका सिद्धान्त है कि मृत्यु लोककी स्थूल सृष्टिका कारण दैवी सूक्ष्म सृष्टि है॥

जैसे वेदमें कहा है कि चन्द्रमा मनसे तथा सूर्य चक्षुसे पैदा हुए और द्वितीय जगह यह भी वेदमें लिखा है कि चन्द्रमासे मन और सूर्यसे चक्षु उत्पन्न हुए सो ये दोनों बातें ठीक हैं। पहिले कथनका अभिप्राय यह है कि समष्टिरूप विराट् भगवान्के दिव्य मनसे चन्द्रमा और दिव्य चक्षुसे सूर्य उत्पन्न हुए हैं। तथा द्वितीय का अभिप्राय यह है कि आकाशमें प्रत्यक्ष दीखने वाले

सूर्यके अंशसे मनुष्यादिके चक्षु हुए और चन्द्रमासे मनुष्यादिका मन उत्पन्न हुआ है। यदि कोई मान बैठै कि मनुष्यकी आंखसे सूर्य पैदा हुए तो यह कथन सर्वथा असत्य माना जायगा वैसे ही संसारी घोड़ेके वीर्य से सोमलताकी उत्पत्ति कहना मानना भी असम्भव है इससे महीधरभाष्यका भी वही अभिप्राय है कि जो ऊपर लिखागया। इसका सारांश यह निकला कि वेद के सभी वाक्य तथा पदों से तत्त्वज्ञान दिखाया जाता है। कार्य सब कल्पनामात्र हैं वास्तवमें कुछ नहीं, जैसे सूतसे भिन्न वस्त्र कुछ नहीं, किन्तु सूतमें की कल्पनाका नाम वस्त्र है। सुवर्णसे भिन्न आभूषण कुछ नहीं किन्तु सुवर्णमेंकी खास कल्पना ही आभूषण है। इसीके अनुसार संसारी घोड़ा शरीर भी सूर्यनारायणसे प्रकट हुआ सूर्य ही का रूप है॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव ॥४॥

शु० यजु० अ० २३। २०॥

महीधरभाष्यम्-पूर्वमन्त्रशेषः। तौ त्वमहं च उभौ चतुरः पदः पादानावां संप्रसारयाव

तत्र द्वौ मम द्वौ एवं संवेशनप्रकारः ॥

शतपथे—ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयावेति मिथुनस्यावरुध्यै ॥ शतप० १३।२।२।५

भावार्थः—इस कण्डिकामें इतना अंश पूर्वोक्त (आहम७) इस चतुर्थ मन्त्रका शेष भाग है। पूर्व कहे अनुसार राजमहिषी मृत घोड़ा शरीर रूप सूर्यनारायणकी मूर्त्ति के समीपमें लेटी हुई सूर्यमण्डलमें सुवर्णकीसी चमक वाला जो विष्णु भगवान्का एक स्वरूप छान्दोग्योपनिषद् में कहा है उन्हीं भगवान्के दिव्यपुरुष रूपसे कहती है कि हे परमात्मन्! तुम और मैं दोनों दो आपके और दो मेरे इन चारों पगोंको एकरूपसे (संप्रसारयाव) फैलावें। ईश्वर परमात्माके दो पग ऋत और सत्य वा रयि और प्राण वा सूर्य और चन्द्रमा वा प्रकृति और पुरुष वा माया और ब्रह्म इत्यादि रूप ईश्वरके दो पग सगुण पुरुषाकार होनेकी दशामें हैं। तथा राजमहिषीके दो पग राजशक्ति और प्रजाशक्तिरूप हैं इन चारों पगों को मिलाकर फैलाया जाय तो प्रवृत्ति में धर्मानुकूल संसारकी उन्नति हो सकती है । शतपथमें

(मिथुनस्यावरुध्ये) लिखा है उसका भी अभिप्राय यही है कि माया, ब्रह्म तथा राजा प्रजा इन सबका मिथुन नाम सम्यक् मेल दिखाने के लिये ही मन्त्र में वैसा कहा गया है । अभिप्राय यह है कि जैसे माया और ब्रह्म दोनों मिलकर एकाकार हुए सब ब्रह्माण्ड का काम ठीक नियमसे चला रहे हैं वैसे ही भूमण्डलपर राजा और प्रजा ठीक २ मिलकर संसारकी व्यवस्था चलावें ॥

यदि कोई महाशय कहें कि यह तुम्हारा अर्थ खेंचा-खेंचीका मनमाना है तो जवाब यह होगा कि यह अर्थ बिलकुल ठीक तथा सत्य है इसमें कुछ भी बनावट नहीं है। परन्तु हम उन लोगोंसे पूछते हैं कि जिनने पं० महीधर भाष्यकार की भरपेट निन्दा की है वे लोग [तावभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव] इतने मन्त्रांशका महीधरकृत क्या अर्थ समझते हैं ? ॥

महीधरका संस्कृत भाष्य ऊपर हम लिखचुके हैं तद्-नुसार यही अर्थ हो सकता है कि " राजमहिषी घो-ड़से कहे कि हे अश्व । दो पग तुम्हारे दो हमारे इन चारों पगोंको हम दोनों पसारें, इसमें विचारणीय यह

है कि घोड़ेके चार पग होते हैं इसीसे पशु चतुष्पाद चौपाये कहाते हैं, और राजमहिषीके दो पग हुए तो दोनोंके छः पग मन्त्रमें और महीधरको लिखने चाहिये थे फिर चार पग क्यों लिखे? यह बात स्वा० दयानन्द से लेकर आजतक किसी भी समाजीको नहीं सूझी। इस बातके विचार से सिद्ध होता है कि घोड़ा शरीरके प्रत्यक्ष होने पर भी राजमहिषीका लक्ष्य घोड़ारूप शरीराधिष्ठानकी अधिष्ठात्री दो पग वाली देवता है तभी चारों पग कहना बनेगा। स्वा० दयानन्दने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चार पग लिखे हैं सो यह उनका लेख शतपथादिसे विरुद्ध मनमाना कल्पित है। और कोई पूछे कि धर्मादि चार पग किसके हैं क्योंकि पग अवयव हैं उनका अवयवी कौन है? इसका जवाब भी कोई समाजी नहीं दे सकता। इससे स्वा० दयानन्दका अर्थ असत्य है और ऊपर किया हमारा अर्थ युक्ति प्रमाण सहित होने से सत्य है॥ ४॥

स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथाम्॥ ५॥

महीधरभाष्यम्—अध्वर्युर्वदति हे अश्व-

महिष्यौ युवां स्वर्गे लोकेऽस्यां यज्ञभूमौ प्रोर्णुवाथां वास आच्छादयतम् ॥

शतपथे-स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथामित्येष वै स्वर्गो लोको यत्र पशुꣳ संज्ञपयन्ति त·स्मादेवमाह ॥ शतप० १३ । २२ । ५ ॥

भाषार्थ-इस वीसवीं कण्डिकाका यह पहिला मन्त्र है । कण्डिका और मंत्र के भेद को स्वा० दयानन्द जी नहीं जानते थे इससे मन्त्रोंके अर्थोंमें घपला कर डाला है तथा समाजी लोग अबतक भी इस भेदको नहीं जानते तो भी वेदको जानने माननेका झूंठा दम भरते हैं यही आश्चर्य है । अध्वर्यु कहता है कि हे अश्व और राजमहिषी तुम दोनों यज्ञभूमिरूप स्वर्गलोकमें वस्त्र का आच्छादन करो अर्थात् अश्वनामरूपात्मक सूर्यमण्डलस्थ साक्षात् भगवान् तथा राजमहिषी नाम रूपात्मक माया शक्ति ये दोनों घोड़ा शरीर और राजमहिषी के शरीर रूप वस्त्रोंसे आच्छादित दीख पड़ें । शतपथ श्रुति कहती है कि इस मन्त्रमें स्वर्गलोक उसी

का नाम है कि जिस यज्ञभूमिमें पशु का संज्ञपन क-
रते हैं उसीका नाम शामित्र शाला है इसी कारण
मन्त्रमें ऐसा कहा है कि [स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथाम्]
इस मन्त्रसे यह दिखाया है कि माया जड़ होने पर
भी क्रियावती है और ब्रह्म चेतन होने पर भी नि-
ष्क्रिय रहता है। तदनुसार ब्रह्मस्थानी अश्व शरीर
मृत होनेसे क्रिया रहित पड़ा है उसी निष्क्रिय ब्रह्म
से मिलकर माया शक्ति ब्रह्मरूप होना चाहती है ॥५॥

वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ ६ ॥

अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषावाजीति
कातीयकल्पसू० २० । ६ । १६ ।

शतपथे-वृषा वाजी रेतो दधात्विति
मिथुनस्यैवावरुध्यै ॥१३ । २ । २ । ५ ॥

अस्यायमाशयः-यदा च मृतेनाश्वशरी-
रेण सह राजपत्न्या ग्राम्यधर्मस्यासंभवः,
तदात्रेत्थं बोध्यम्-शिप हिंसार्थो धातु-
स्तत -औणादिको नक् प्रत्ययः । शेपति

तमोऽपहन्तीति शिश्नः सूर्यप्रकाशः [धातोः पस्य शकारादेशश्छान्दसः] तं प्रकाशं राजमहिषी उपस्थे कुरुते हार्दसम्बन्धेन स्वस्य समीपस्थे राज्ञः शरीरे स्थापयति। वृषा वृष्टिकर्त्ता वाजी वेगेन धावनशीलः सूर्यः सोमरूपं रेतो दधातीति रेतोधारको मयि मदीयाद्धाङ्गे राज्ञः शरीरे रेतो वीर्यमद्भुतरूपं पराक्रमं प्रजारक्षणशक्तिं धर्मस्वरूपां दधात्वित्यश्वशरीरमूर्त्तिं पुरस्कृत्य तदभिमानिसूर्यमण्डलस्थाद्भगवतो राजमहिषी याचते। लोके परलोके च सर्वं सुखं राज्ञो राज्ञ्याश्च धर्मेणैव सम्भाव्यते सुखावाप्तिरेव महिष्याः परममभीप्सितम्। यथा लिङ्गेन्द्रियाच्छुक्रं निस्सरति तथैव शिश्नपदवाच्यात्सूर्यप्रकाशात्प्रायेण धर्मः प्रभवति

सूर्यप्रकाशाभावे च रजन्यां स्तेयं व्यभिचारादिकं च वर्धते धर्मेणैव परमा शान्तिः सेव सोमाख्ये चन्द्रमसि स्वरूपेणैव विराजते शान्तमेव धर्मस्य स्वरूपम्। धर्मेणैव राज्ञः प्रभुत्वं वर्धते। अश्वमेधादियज्ञेषु राज्ञो धर्मात्मत्वं संपाद्यते राज्ञि धर्मनिष्ठे प्रजायामपि धर्मएव सर्वतोदिक्षु वर्धते तेनैव लोके सर्वत्र शान्तिसुखं विराजते तमेव धर्मांशं रेतःपदवाच्यं सोमामृतस्वरूपं सूर्यमण्डलस्थाद् भगवतो राजमहिषी याचते।

यस्मिन्नश्वमेधे राज्ञो धर्मात्मत्वमतिपादनमेव प्रयोजनं तत्र कामित्वमूलमश्वेन साकं राज्ञ्या मैथुनकल्पनं तु धर्मविरोधिनामेव कृत्यं संभवति महीधरस्याप्ययमेवाशयः॥

भाषार्थः-ऊपर लिखे शतपथ ब्राह्मण कातीय श्रौत सूत्र और महीधर भाष्यका अभिप्राय यह है कि जब मरेहुये घोड़ेके शरीरके साथ राजपत्नीका ग्राम्यधर्मरूप मैथुन संयोग हो सकना असम्भव है तथा वेदकी वाक्य रचना बुद्धिपूर्वक होना महर्षिकणादादिके अनुकूल है और यज्ञमें काम क्रोधादिका सर्वथा त्याग है तथा कामवासना जागे बिना जीवितके साथ भी मैथुन संयोग हो नहीं सकता तब इत्यादि कारणोंसे यहां अभिप्राय यह जानो कि अन्धकारको नष्ट करने वाले सूर्यके प्रकाशका नाम शिश्न है राजमहिषी उस सूर्य प्रकाशको अपने समीपस्थ राजाके शरीरमें स्थापित करती है । अर्थात् राणी अश्वमूर्त्ति में सूर्यनारायणका ध्यान करती हुई सूर्यके तेजको राजामें मानस विचारसे स्थापित करती है । और रानी सूर्य भगवान्से कहती है कि (वृषा वाजी) वेगसे अपनी परिधिमें घूमने और वर्षा करने वाले तथा (रेतोधाः) चन्द्रमारूप रेतनाम अमृतरूप जीवन शक्तिको धारण करने वाले सूर्यनारायण (मयि) मेरे अङ्गाङ्गरूप राजाके शरीरमें (रेतः)

अमृतरूप पराक्रम वा धर्मरूप प्रजारक्षण शक्तिको (दृ-धातु) धारण करें ॥

इस प्रकार घोड़ेकी शरीररूप मूर्त्ति को आगे करके उस मूर्त्ति के अभिमानी अधिष्ठाता सूर्य मण्डलस्थ भगवान्से राजपत्नी याचना करती है। इस लोक तथा परलोकमें राजा रानी दोनोंको धर्मसे ही सब प्रकार का सुख होना सम्भव है। और सुखका प्राप्त होना ही रानीका परम अभीष्ट कर्त्तव्य है । जैसे लिङ्गेन्द्रियसे शुक्र निकलता है वैसे ही शिश्न नामक सूर्यके प्रकाशसे प्रायः धर्म प्रकट होता है, इसी कारण रात्रिमें सूर्य प्रकाशके न होनेसे ही चोरी व्यभिचारादि काम प्रायः होते हैं। धर्मके बढ़नेसे ही संसारमें परम शान्ति होती है वही शान्ति सोम नामक चन्द्रमामें विराजमान है धर्मका वास्तविक स्वरूप शान्तिमय है। धर्मसे ही राजा की प्रभुताका तेज बढ़ता है ॥

अश्वमेधादि यज्ञोंमें राजाका धर्मात्मा होना सिद्ध किया जाता है अर्थात् यज्ञोंके करनेसे राजा धर्मात्मा होजाता है तब राजाके धर्मनिष्ठ होने पर प्रजामें भी

सब ओर धर्म बढ़ता है उसीसे प्रजामें सर्वत्र शान्ति सुख विराजमान होता है। उसी सोमामृत स्वरूप रेतः पद वाच्य धर्मांशको राजमहिषी अश्वमूर्त्ति के द्वारा सूर्यमण्डलस्थ भगवान्से मांगती है॥

जिस अश्वमेधयज्ञमें राजाको धर्मात्मा बनाना वेदोक्त यज्ञका प्रयोजन सिद्ध होता है वहां कामवासना पूर्वक घोड़ेके साथ रानी का मैथुन कल्पना करना तो वेदोक्त धर्मके विरोधियोंका ही काम हो सकता है महीधरका भी यही अभिप्राय है। यदि किसी महाशयको यह शंका वा सन्देह हो कि (गणानांत्वा०) इत्यादि मन्त्रोंसे कार्य होने के समय घोड़ा जीवित है वा मर चुका है? तो वे महाशय हमसे समझ लें। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि उस समय घोड़े का मृत हो चुकना हम सब प्रकारसे समझा देंगे। ऐसी दशामें मरे और जीवितका मैथुन संयोग हो सकना सर्वथा असम्भव है। यदि कोई आ० समाजी मनुष्य (गणानांत्वा०) इत्यादि मन्त्रोंके विनियोग समय यज्ञ पद्धतिकी प्रक्रियासे यह सिद्ध करदे कि घोड़ा जीवित है तो हम उसे

१००००)रु० देने की प्रतिज्ञा करते हैं। अब यह सिद्ध है कि उक्त मन्त्रोंके विनियोग समय घोड़ा मृत हो चुका है तो स्वामी दयानन्दजीने ऋग्वेदादि भूमिकामें घोड़ेके साथ रानीका संयोग मानते हुए वेदभाष्यकार महीधर पण्डितको वाममार्गी कहा है सो विलकुल झूंठहै। और घोड़ाके मृत होने आदि पूर्वोक्त कई कारणोंसे हमारा किया मन्त्रार्थ सत्य है॥ ६॥

उत्सक्थ्याअवगुदंधेहि समञ्जिचारयावृषन्। यस्त्रीणांजीवभोजनः ॥७॥

उत्सक्थ्या इत्यश्वं यजमानोऽभिमन्त्रयते। कातीयसू० २०। ६। १७॥

अर्थः-हे वृषन्! वृष्टिकर्त्तः सूर्यनारायण! यो भवदीयः प्रकाशः स्त्रीणां जीवभोजनो जीवस्य जीवनस्य पालको रक्षकस्तमञ्जिं सर्ववस्तुव्यञ्जकं प्रकाशं लोके संचारय। तथा चोत्सक्थ्याउत्कृष्टे प्रबले पुष्टे

सक्थिनी यस्यास्तस्या बलवत्याः प्रजा-
या गुदं क्रीडामानन्दं हर्षमवधेहि । गुद-
क्रीडायामिति धातोर्घञर्थे कः प्रत्ययः।
व्यक्त्यर्थादञ्जूधातोरौणादिक इः प्रत्ययः।
भोजनइति पालनार्थाद्भुजेरौणादिकोल्युः
प्रत्ययः। यौगिका एव सर्वे वैदिकाः शब्दाः॥
भा०—स्त्रीषु कामोऽष्टगुणः स च रात्रिसा-
धनः, कामसेवया स्त्रीणां पुरुषाणां च जी-
वनरूपा प्राणशक्तिर्नश्यति सूर्यप्रकाशश्च
रात्रिं नाशयन् कामसेवनान्निवर्त्तयंश्च
स्त्रीणां पुरुषाणां च जीवनं रक्षति सूर्योद-
याभावे रात्रावेव सत्यां कामिनः स्त्रीपुरुषाः
कामसेवनादनिवृत्ताः सद्यःसद्यो म्रियेरन्।
सूर्यनारायणः स्वप्रकाशप्रवृत्त्या प्रजां बल-
वतीं करोति। ऊरुपुष्टिरेव बलवत्त्वस्य

चिन्हं कामासक्तिरेव बलनाशिका । यज-मानश्चाश्वमूर्त्तिमधिष्ठानरूपां पुरस्कृत्या-धिष्ठातुः सूर्याद् भगवतः कामासक्तिनिवृत्त्या प्रजापुष्टिं प्रजारक्षणं च याचते । रा-ज्ञ्याश्चैतदर्थमेवाश्वसमीपे शयनम् । महीधरवेदभाष्यकारस्याप्ययमेवाशयो भवितु-मर्हति । मृतेनाश्वशरीरेण ग्राम्यधर्मासम्भवात् ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे (वृषन्) वर्षा करने वाले सूर्यनारायण ! (यः, स्त्रीणां जीवभोजनः) आपका जो प्रकाश स्त्रियोंके जीव नाम जीवनका पालन करने वाला है उस (अग्निं सञ्चारय) सब वस्तुओंके स्वरूपको प्रकट करने वाले प्रकाशका संसारमें संचार करो अर्थात् अन्धकार को निवृत्त करो और (उत्सक्थ्या गुदम्भधेहि) प्रबल वा पुष्ट हैं जङ्घा नाम गोड़े जिसके उस बलवती प्रजा के खेल कूद आनन्दको बढ़ाइये । वेदके सभी शब्द यौगिक होते हैं । इस लिये प्रकरणके अनुकूल यहां यौगिक अर्थ किया गया है ॥

भा-शस्त्रियोंमें पुरुषकी अपेक्षा कामासक्ति अठगुणी होती है, काम भोगका साधन रात्रि है, कामके सेवनसे स्त्रियों और पुरुषोंकी जीवन रूप प्राण शक्ति प्रतिक्षण नष्ट होती जाती है इसी कारण ब्रह्मचर्य धारणसे जीवनरूप प्राणशक्ति सुरक्षित होती नाम वढ़ती है। और सूर्यनारायणका प्रकाश रात्रि रूप अन्धकारको नष्ट करने द्वारा स्त्री पुरुषोंको काम सेवनसे निवृत्त करता हुआ स्त्री पुरुषोंके जीवनकी रक्षा करता है। यही वात जीव भोजन पदसे दिखा दी है। यदि सूर्यनारायणका उदय न हो और रात्रि ही वनी रहे तो कामी स्त्री पुरुष काम सेवनसे निवृत्त न होते हुए वहुत जल्दी मरने लगें इससे सिद्ध हुआ कि सूर्यनारायण का प्रकाश ही विशेष कर जीवन का रक्षक है॥

द्वितीय यह भी है कि प्राण ही जीवन रूप है और अपान ही मृत्युरूप है सो दिनमें स्वभावसे ही प्राणका वल बढ़ता और रात्रिमें अपानका वल वढ़ता है। इसी से दिन जीवनका हेतु तथा रात्रि मृत्युका हेतु है इस रीतिसे भी, सूर्यका प्रकाश विशेषकर प्राणियोंके जीवन का रक्षक है। सूर्यनारायण अपने प्रकाश को फैलाने द्वारा प्रजाको वलवती करते हैं। जांघोंकी पुष्टि ही व-

बलवान् होनेका चिन्ह है क्योंकि बलवान् लोगों की जंघा भी वैसीही विशेष पुष्ट होती हैं तथा कामासक्ति का बढ़ना ही बलका नाशक है । यहां अश्वमेध यज्ञमें राजा रूप यजमान घोड़ा रूप सूर्यकी सामने रहता हुआ अधिष्ठाता सूर्य भगवान्से कामासक्तिकी निवृत्ति पूर्वक प्रजाकी पुष्टि और रक्षा चाहता है इसी प्रजाकी रक्षा और पुष्टिके लिये रानीका मृत अश्वके समीप ले-टना जाना ॥

वेद भाष्यकार महीधरका भी यही अभिप्राय हो सकता है । क्योंकि मरे हुये अश्व नारीके साथ मैथुन संयोग जब हो ही नहीं सकता तब वैसा अर्थ करना भी वे समझते हैं। स्वामी दयानन्दको यह ज्ञान नहीं था कि अश्वमेध यज्ञमें (गणानांत्वा०) इत्यादि मन्त्रोंके विनियोगके समय यज्ञ पद्धतियोंमें लिखी प्रक्रिया के अनुसार अश्व मृत पड़ा है । यदि वे जान लेते तो सं-भव था कि महीधर वेद भाष्यकारको ऐसा दोष नहीं लगाते । यदि वर्तमान आ० समाजियोंमें कुछ भी स-त्यता वा निष्पक्षता हो तो उनको चाहिये कि वे अपने चौथे नियम को सार्थक करलें अथवा घोड़े को जीवित सिद्ध करें वो दस हजार रुपया लेवें। सोचनेका मौका

है कि संसार को कैसा धोखा दिया गया है। अब म-
हीधर का शुद्ध होना और इन लोगों का कामी होना
सिद्ध हो गया॥ ८ ॥

अब यहां अश्वमेधके विचारणीय १३ कण्डिकाके १८
मन्त्र मन्त्रोंमें से चार मन्त्रोंका विचार कार्यकाण्डमें हो
चुका। इनमें मृत अश्वशरीर और राजमहिषी के मैथुन
संबन्धका आक्षेप निर्मूल होनेकी दशामें जो अर्थ ह-
मारी समझमें आया सो लिखा गया। हमारे इस पूर्व
लिये अर्थ पर यदि कोई महाशय कभी कुछ पूर्वपक्ष
उठानेकी इच्छा करें तो उनको उचित होगा कि वे
पहिले अश्वमेध यज्ञपद्धति की प्रक्रियानुसार इन (ग-
णानांत्वा०) आदि मन्त्रोंके विनियोगके समय घोड़े
को जीवित सिद्ध करें वा मृतक जीवित दो प्राणियों
का मैथुन हो सकना सम्भव ठहरावें अथवा मन्त्र ब्रा-
ह्मण दोनों ही का खण्डन करें किन्तु ऐसा न करके
केवल हमारे किये अर्थका खण्डन करेंगे तो वह निर-
र्थक इसलिये होगा कि मन्त्र ब्राह्मण कल्प तीनों की
एक संगतिके अनुसार होनेसे हमारा किया अर्थ ठीक
है। वैसे ही अश्वको मृत मानता हुआ ही कोई कलुष
यज्ञ को काम क्रोधादिसे ऐसा ऋषि महर्षियोंने बनाया

है वैसा ही बचाकर ठीक संगति लगाके वेदार्थ करे तो वह अवश्य मान्य हो सकता है। उस दशामें तात्पर्यार्थ एक हो जाने पर द्वितीयार्थ भी माननीय हो सकता है॥

इस अश्वमेधकी १३ कण्डिका में दो प्रकार का आक्षेप विपक्षियों की ओर से था, एक तो राज महिषी तथा घोड़े का समागम, और द्वितीय अध्वर्यु आदि ऋत्विजोंका स्त्रियोंके साथ उपहास [दिल्लगी] वा अश्लील भाषण। इनमें से पहिले आक्षेप का विचार तो हो चुका। अब द्वितीय आक्षेप का समाधान लिखने में यह वक्तव्य है कि महीधर भाष्यकारने उपहास विषयमें जो अर्थ लिखा है वह वेदके पूर्ण अधिकारी विद्वान् लोगोंके ही देखने योग्य है कि जो काम क्रोधके वशीभूत न हो सकें। परन्तु वह वेदार्थ साधारण अनधिकारी लोगोंके देखने योग्य नहीं है। और दूसरी बात अच्छे २ समझदारोंको यह भी निर्विवाद मानना ही पड़ती है कि जिनमें अनुचित वा अन्याय कुछ भी नहीं ऐसी बातें बिलकुल सत्य भी हों पर तो भी ऐसी गोप्य रहस्य वा अवाच्य बातोंको कोई भी सर्वत्र सबके सामने कहना उचित नहीं समझता। जैसे

उदाहरणके लिये मान लो कि डाक्टरी विद्या में स्त्री पुरुषोंके गुप्तांगोंके भिन्न २ अंशोंका वर्णन सब किसीके सामने खुलासा नहीं किया जाता। किसीके गुप्ताङ्गमें कुछ रोग हो वा स्त्रीकी मूढ़गर्भ चिकित्सा करनी हो तो डाक्टर वैद्यादि उस कामको पड़दे में ही करते हैं अनुचित न होने पर भी सबके सामने वैसे काम नहीं किये जाते॥

विवाहित स्त्री पुरुषोंका व्यवहार अनुचित न होने पर भी गुप्त ही होता है। उसके अनुचित न होने पर भी सर्वसाधारणमें कहा नहीं जाता। प्रत्येक मनुष्य शोचकर जान सकता है कि मेरी उत्पत्ति इस प्रकारके व्यवहार से हुई है परन्तु अपने माता पिताके उस व्यवहारको उचित वा सत्य समझता हुआ भी न तो सबके सामने कहना चाहता और न अन्य किसीसे सुनना चाहता है। प्रत्युत कोई वैसा कहे तो उससे लड़नेको तयार होता है। इससे सिद्ध हुआ कि निर्दोष निष्पाप सत्य वात भी गोप्य रहस्य वा अवाच्य हो तो उसको सब के सामने नहीं कहना चाहिये। और यदि कोई कुछ कहता है तो वह दोषी तथा अपराधी है। इसी के अनुसार अश्वमेध यज्ञके समय वे

वे अध्वर्यु आदि ऋत्विज् तथा राजपत्नी दोनों ओर से एक २ मन्त्र उपहासका पढ़ें यह वेदोक्त यज्ञरीति है । वेदकी आज्ञा होनेसे सत्य भी है तो महीधर वेदभाष्यकारके लिखे अनुसार उन मन्त्रोंका अर्थ संस्कृतमें वा लोक भाषामें किसीको भी यज्ञके समय वा अन्यत्र कहना सुनाना कदापि उचित नहीं ॥

महीधरका भी यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि यज्ञके समय वा अन्यत्र कहीं यह अभिप्राय प्रगट किया जाय किन्तु महीधरका भी यही मतलब है कि ऐसा अर्थ कहीं भी कहने योग्य नहीं है केवल वेदाधिकारी शुद्ध पुरुष जानना चाहें कि उपहास विषयमें इन मन्त्रोंका क्या अर्थ है तो इस संस्कृत लेखसे वे लोग जान सकें । इससे सिद्ध हुआ कि जैसे पुत्रोत्पत्ति के लिये शास्त्रानुकूल उचित व्यवहार करने वाले स्त्री पुरुषों का कुछ दोष नहीं और उस व्यवहार से उत्पन्न हुआ पुत्र अपने माता पिताके उस व्यवहारका व्याख्यान स्वयं नहीं करना चाहता तथा अन्यसे भी उस व्यवहारका व्याख्यान सुनना नहीं चाहता इसमें उन माता पिता तथा पुत्र किसी का भी कुछ दोष नहीं किन्तु सभी शुद्ध और निर्दोष हैं केवल दोष उस भ-

नुष्यको है कि जो उस सत्य निर्दोष रहस्य नाम गुप्त अवाच्य व्यवहारको सबके समक्ष भाषान्तरमें प्रकाशित करना चाहता है ॥

ऐसे इसी विचारके अनुसार वेद सर्वथा निर्दोष हैं जानने मात्रके लिये संस्कृतभाषामें अर्थ लिख देनेवाले महीधर वेदभाष्यकार भी सर्वथा निर्दोष हैं। केवल उस को लिखने बोलने द्वारा सर्वसाधारण को सुनाने वाले वेदतत्त्वानभिज्ञ नवीन मतावलम्बी लोग ही दोषी अपराधी अवश्य सिद्ध हो सकते हैं। जब कि वह अर्थ अवाच्य है तो इसीसे हम भी उसे कहना उचित नहीं समझते किन्तु यज्ञ वा स्वाध्यायादिके समय केवल मन्त्र मात्र वाच्य हैं। तथापि जैसे रक्षो दैवतादि मन्त्रोच्चारणानन्तर कल्पसूत्रकारोंने जलस्पर्श रूप प्रायश्चित्त लिखा और माना है वैसा ही किया भी जाता है। वैसे यहां भी अश्लील भाषणके बाद (दधिक्राव्णो०) मन्त्रसे प्रायश्चित्त दिखाया है ॥

इस ऊपरके लेखसे सिद्ध हुआ कि महीधरोक्त वेदार्थ सत्य होने पर भी अवाच्य होनेसे कहना लिखना उचित नहीं। वेदोक्त अश्वमेध यज्ञका करना खास क्षत्रिय राजाका ही काम है प्रजाका कोई भी मनुष्य

इस यज्ञका अधिकारी नहीं यह बात श्रुति स्मृति पुराण सबके सिद्धान्तसे सम्यक् सिद्ध है। इसी अभिप्राय से शतपथ ब्रा० के कां० १३ प्रपाठक २ के ब्रा० ३ की ९ कण्डिकाओंमें इन उपहास विषयक मन्त्रोंका अर्थ राजधर्म पर किया है और वह अर्थ अवाच्य भी नहीं किन्तु वाच्य भी अवश्य है। इसलिये इस पूर्वोक्त संवादकी दशों कण्डिकाओंमें राजधर्मसम्बन्धी शतपथानुकूल अर्थ हम आगे दिखाते हैं॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगितिवञ्चति।
आहन्तिगभेपसो निगल्गलीतिधारका ८।

यकासकौ शकुन्तिकेति। विड्वै शकुन्तिकाहलगिति वञ्चतीति विशो वै राष्ट्राय वञ्चन्त्याहन्ति गभे पसो निगल्गलीतिधारकेति विड्वै गभो राष्ट्रं पसो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः॥६॥ शतप० कां० १३। २। ३। ६॥

अ०—प्रथममध्वर्युः कुमारीं प्रति वदति

हेकुमारि (यकासकौ) याऽसौ [अकच् प्रत्ययान्ताविमौ] (शकुन्तिका) कुत्सिता शकुन्ता शकुन्तिका स्वार्थसाधनरता कुत्सिता प्रजा [कुत्सिते अ० ५ । ३ । ७४ इति कुत्सितार्थे कन् प्रत्ययः] (आहलगिति वञ्चति) राज्ञे देयं भागमपि नैव दातुमिच्छति अर्थात् कुत्सिता प्रजा सैवास्ति या राजानमपि वञ्चयेत् (आहन्ति गभे पसः) राजा प्रजायाः करमादत्ते—आदानं चाप्रियकरमिति कृत्वा विशि हन्यमानायां राजैवाऽऽहन्ति पीड्यते (निगल्गलीति धारका) प्रजा धान्यादिवस्तूनामाधिक्येन भोक्त्री धारका रक्षिका च भवति निर्धनत्वात्, राजा च क्षीणत्वादेव भोक्तुमशक्तो भवति ॥

भा०=याऽसौ स्वार्थसाधनपरा प्रजा रा-

ज्ञो समुचितमपि करं नैव दातुमिच्छति ध-
र्मनिष्ठमपि राजानं वञ्चयति नाऽसौ प्रजा
कदापि सुखं लभते । प्रजारक्षार्थमपि क-
रमाददानो राजाऽऽदानदोषेण पीड्यते, अ
र्थात्करादानदोषस्य दस्युरक्षणे जायमान-
कष्टस्य च प्रजास्थानिका स्त्रीशक्तिरेव हेतुः।
आहारो द्विगुणः स्त्रीणां कामश्चाष्टगुणस्ते-
नाहारसुखं कामसुखं च विशेषेण प्रजास्था
निका स्त्रीशक्तिरेव भारयति सैव राज्ञः पु-
रुषस्य बन्धनहेतुः । एवमत्राध्वर्युः पुरुष-
सामान्यं निर्दोषं दर्शयन् मायाप्रधानस्त्री-
सङ्गादेव पुरुषो दुःखान्याप्नोतीति दर्शय-
ति । एकां कुमारीमुद्दिश्य स्त्रीजातेरेव र-
क्ष्यसामान्यप्रजामिषेण दोषदर्शनं मन्त्र-
कारस्य तात्पर्यमवगन्तव्यमिति ॥ ८ ॥

भावार्थ-(चक्रवर्ती) जो वह (अकुन्तिका) माया पटि-
त विलक्षण शक्ति वाली निन्दित प्रजा [विलक्षणशक्ति
यही है कि स्त्री अबला निर्बल कहाती हुई भी पुरुष
का विदारण करने से दार कहाती है] (आहलगिति
वक्षुति) राजाको देने योग्य भागको भी नहीं देना चा
हती अर्थात् कुत्सित निन्दित प्रजा वही है जो राजा
को भी ठगे (आहन्ति गले पशुः) राजा प्रजा से कर
लेता है जो "लेना अप्रियकारक है,, इस धर्मशास्त्रकी
आज्ञानुसार करलेना दुःखदायी होनेसे प्रजाके पीड़ित
होनेपर राजा ही पीड़ित होता है क्योंकि देनेमें दोष नहीं
तथा लेनेमें दोष है इसी कारण लेनेके दोषसे राजा पीड़ित
होता है और फिर भी कर लेनेके कारण राजा (विशं घा-
तुकः) प्रजापीड़क कहाता है (निगल्गलीति घास्ता)
प्रजा अन्नादि पदार्थों को अधिकतासे बार २ निगलने
खाने वाली और अपने पास अन्नादिको रखने वाली है।
खाने पचानेकी शक्ति निर्धनको विशेष होती है इसीको
अच्छी भूख लगनेसे स्वाद मिलता है तथा श्रीमान्
होनेसे राजा भोगने में असमर्थ होता है। दरिद्रता वा
गरीबी राजासे प्रजामें सदा ही अधिक रहती है ॥

भा०-जो वह स्वार्थ परायण प्रजा राजाको उचित कर भी नहीं देना चाहती, धर्मनिष्ठ राजाको भी ठगती है, इसीसे वह कभी सुख नहीं पाती । प्रयोजन यह कि प्रजास्थानी स्त्री शक्ति वा माया शक्ति ही सब प्रपंच रूप है वही पुरुषको अपने पर मोहित करके पुरुषसे स्वयं तो सुख भोग करना चाहती है और इसी लिये पुरुषको सदा मोह जालमें फंसाये रखना चाहती है परन्तु अपने स्वार्थमें अन्धी रहती हुई राजा रूप पुरुषको बंधनसे छुड़ा देना नहीं चाहती । प्रजाकी रक्षाके लिये ही कर लेता हुआ राजा लेनेके दोषसे पीड़ित होता है अर्थात् लेनेके दोषका और रक्षा करने योग्य प्रजाकी रक्षा करने में होने वाले कष्टका हेतु प्रजास्थानी स्त्री शक्ति ही है। स्त्री का भोजन पुरुषसे द्विगुणा और काम अठगुणा है तिससे भोजनका सुख और काम भोग का सुख विशेष कर प्रजास्थानी स्त्री ही धारण करती है वही राजा रूप पुरुषके बंधनका हेतु है । इस प्रकार यहां अध्वर्युने सामान्य पुरुषमात्र को निर्दोष वा कम दोष युक्त दिखाते हुए माया प्रधान स्त्रीके संगसे ही पुरुष दुःखोंको पाता है ऐसा वि-

चार दिखाया है। इस प्रकार एक कुमारी कन्या को समझ करके रक्षाके योग्य प्रजादि रूप सामान्य स्त्रीजातिका ही दोष दिखाना मन्त्रकारका तात्पर्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥ अब इसके ऊपर कुमारीकी ओरसे अध्वर्यु को समझ करके पुरुष सामान्य से कथन अगले मन्त्रमें किया है ॥

यकोऽसकौ शकुन्तकआहलगितिवञ्चति। विवक्षतइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥९॥

अ०—योऽसौ कुत्सितः शकुन्तः शकुन्तकः सामान्यः पुरुषो राजा वा (आहलगिति वञ्चति) अहमेव सर्वस्य भोक्ता भवेयं मदधीनमेव सर्वं भोग्यं वस्तु स्यादिति मत्वा लोभेन धनाद्युत्तमवस्त्वाकर्षणाय प्रजाजनान् वञ्चति। हे अध्वर्यो अग्रे विवक्षतो

वक्तुमिच्छतद्भव तें तव मुखमस्ति तस्मा-
क्षोऽस्माकं स्त्रोणां सक्रिधौ एवं नाभिभापयाः

भा०-प्रजादिरूपः सौकोऽसिरः सर्वएव
रक्ष्यवर्गो भोग्यप्रधानो भोक्तृभोगोऽसम-
र्थत्वात् कालक्षापयत्यति नृत्यादिरूपा-
णि दश कामजानि पैशुन्यादीन्यष्टौ क्रो-
धजानि च लोभमूलानि व्यसनानि राजैव
सेवते । अत्र परस्परसंवादे स्त्रियः प्रजादि-
रक्ष्यवर्गस्य प्रतिनिधिरूपाः सत्यो रक्ष्यप-
क्षात्मत्युत्तरं ददति । ऋत्विजश्च राजादि-
रक्षकभोक्तृपक्षात्पूर्वपक्षं कुर्वते । रक्ष्यरक्ष-
कयोर्द्वयोरपि दोषवतोः सतोरक्षूरक्षकस्यै
व दोषाधिक्यमिति सर्वप्रकरणे संवादाश
यः ॥ ९ ॥

भाषार्थः=(यक्लौकुमारी) जो यह (प्रशुन्तयः) सामा-
न्य पुरुष वा राजा भोगार्थी होनेसे (आहलगितिवक्षुति)

मैं ही सबका भोक्ता हो जाऊं सब भोग्य वस्तु मेरे ही स्वाधीन हो जावें ऐसा मानकर धनादि उत्तम पदार्थों को अपने अधिकार में कर लेने के लिये प्रजाको वञ्चित करता है। इस लिये है (अध्वर्यो !) अध्वर्यु (विद्वज्जनों में कुशल्) आप कुछ कहना चाहते हुएके तुल्य तुम्हारा मुख है जिससे (मा त्वं माभिभाषथाः) इस रक्षक वर्गस्थानी स्त्रियोंके सामने तुम कुछ मत कहो ॥

भा०-प्रजादि इस सभी रक्षा करने योग्यवर्ग भोग्य प्रधान स्त्री कोटि का है और वह रक्षक भोक्ता पुरुष के आधीन बालकके तुल्य असमर्थ होनेसे अपराधी न-हीं है शिकार खेलनादि दश कामज तथा चुगली आदि आठ क्रोधज इन लोभसे होने वाले अठारह व्यसनों का सेवन कोई २ राजा करता है यहां अश्वमेध यज्ञ संबन्धी परस्पर संवाद में स्त्रियां रक्ष्यवर्गकी ओरसे प्रतिनिधि रूप हुईं वकील मुख्तारोंके तुल्य रक्ष्य पक्ष की ओरसे प्रत्युत्तर देती हैं और रक्षक राजादि भो-क्तृपक्षकी ओरसे ऋत्विज् लोग पूर्वपक्ष करते हैं। य-द्यपि भोग्य भोक्ता रक्ष्य रक्षक दोनों ही दोष युक्त हैं तथापि यहां स्त्री का उत्तरपक्ष रखने से सूचित किया

गया है कि भोक्ता रक्षक पुरुषका ही दोष अधिक है यही इस सब प्रकरण में संवादका आशय जानो ॥ ९॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥ १० ॥

शतपथे=माता च ते पिता च त इति । इयं वै माताऽसौ पिताऽऽभ्यामेवैनꣳ स्वर्गं लोकं गमयति । अग्रं वृक्षस्य रोहतइति श्रीर्वै छूस्याग्रं गमयति । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयदिति विड्वै गभो राष्ट्रं मुष्टी राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशङ्घातुकः ॥ कां० १३ । प्र० २ । ब्रा० ३ कं० ७ ॥

अ०—ब्रह्मा महिषीं प्रत्याह (माता च ते पिता च ते) द्यौष्पिता पृथिवी मातेति वेदेऽन्यत्र स्पष्टम् । मानुषादिसर्वप्राणिशरीर-

मपि द्यावापृथिवीभ्यामेव जायतेऽतोम-
हिण्या अपि मातापितरौ तावेवेति स्थि-
तमेव । हे महिषि ! ते तव माता च
ते पिता च वृक्षस्य-वृश्च्यते छिद्यते स-
वृक्षो राष्ट्रं तस्य नश्वरस्य राज्यस्याग्रं मु-
ख्यं प्रधानांशं श्रियं लक्ष्मीं रोहत आरोहतः
ते तव पिता प्रतिलामि (प्रतीत्येतस्य प्रा-
तिलोम्यमर्थो-लाआदाने तत्प्रातिकूलं दा-
नम्) ददामीति वदन् गभे मातृरूपायां
भोग्यशक्तौ विशि मुष्टिं राष्ट्रं भोक्तृशक्ति-
मतंसयन्नाशयत्याहन्ति ॥

भा०-ब्रह्मा वदति हे महिषि ! यद्यपि
युष्मदादिसर्वस्यैव जनकजनन्योः लक्ष्मी-
रूपं शोभामेवाश्रयतः। शोभारूपालक्ष्मीरेव
सर्वप्रेक्षावतामालम्बनं राजश्रिया सर्वे मोहि-
तास्तथापि भोग्यप्रजाश्रीजनाश्रिया सर्वो

शोभा स्त्रीणां स्त्रीरूपत्वात्=स्त्रियःस्त्रियश्च गेहेषु विशेषो नास्ति कश्चनेति मनुः। प्रजारूपस्त्रीपालनाय भोजनवस्त्रादिकं समर्पयन्-स्वीयं तत्त्वमन्यस्मैददन् पुरुषो नष्टस्त्रोहीनशक्तिर्भवति ।.अर्थात् प्रजारक्षार्थं यतमानो राजैव हीनशक्तिर्भवति । रक्ष्यरक्षणे श्रमेण पीड्यमाने पुरुषे रक्ष्यस्त्रिया एव दोषः। तत्र करादिग्रहणेन प्रजा पीडको राजेति कथनं रक्ष्यवर्गस्य द्वितीयो दोषः। शोभानुभवसुखं प्राप्यावाप्तिसुखं च रक्ष्याधीनं श्रमाधिक्यजन्यं दुःखं रक्षकाधीनं रक्षकः श्रमेण हृतश्रीर्जायते तस्माद्दुःखदः सर्वः स्त्रीरूपो भोग्यप्रधानो रक्ष्यवर्गो भोक्तृपुरुषवञ्चनाय प्रवृत्तो हेयइति भोग्यस्त्रीशक्तिनिन्दायां तात्पर्यम् ॥ १८ ॥

भाषार्थ--(इयं वै माताऽसौ पिता०) इत्यादि शतपथके लेखका अभिप्राय यह है कि इस दशवें मन्त्र में कहे माता और पिता ये ही भूलोक और द्युलोक हैं, इन ही दोनोंके द्वारा अश्वमेधादि यज्ञकर्म इस यजमानको स्वर्गलोकमें पहुंचाता है। अर्थात् जैसे माता पितासे लालित हुआ सन्तान सुखको प्राप्त होता है। वैसे ही इन द्यावा पृथिवीरूप दोनों पिता माताकी गोदमें खेलता हुआ यजमान स्वर्ग सुखका भागी होता है। तथा वृक्ष नाम ब्रह्माण्ड रूप सब राज्यकी शोभाको ये द्यावा पृथिवी ही प्राप्त होते हैं। तुझको देता हूं ऐसा कहता हुआ राजा प्रजामें आहत होता है इसीसे राजा प्रजा का नाशक है॥

भा०--ब्रह्मा नामक ऋत्विज् राजमहिषीसे कहता है कि (माता च ते पिता च ते) अन्यत्र वेदमें स्पष्ट लिखा है कि दिव्लोक पिता और भूमि लोकका नाम माता है। मनुष्यादि सब प्राणियोंके शरीर भी द्यावा पृथिवी से ही प्रकट होते हैं इससे महाराणीके माता पिता भी द्यावा पृथिवीरूप ही हैं। हे महिषि ! तुम्हारे माता और पिता (अग्रं वृक्षस्य रोहतः) नष्ट

हो जाने वाले राज्यके मुख्य प्रधानांश राजलक्ष्मीको प्राप्त होते हैं (प्रतिलाभीति ते पिता) तुम्हारा पिता रूप राजा मै देता हूं देनेवाला हूं ऐसा कहता (गर्भे सुष्टिमलंथ्यंनयत्) तुम्हारी मान करने योग्य मातारूप भोग्यशक्ति नाम प्रजामें भोक्तृशक्तिको नष्ट करता है॥

भा०--ब्रह्मा राजमहिषीसे कहता है कि हे महिषि यद्यपि तुम आदि सभी प्राणियोंके माता पिता लक्ष्मी-रूप शोभाका ही आश्रय करते हैं। राजलक्ष्मीको ही सबसे उत्तम सुखका हेतु मानकर सब मनुष्य राज्यको चाहते हैं। शोभारूप लक्ष्मी ही सब संसारी समझदा-रोंका आलम्ब है, राजलक्ष्मीको सबसे बड़ा मानकर ही सब देशोंके सभी स्त्री पुरुष सब देशोंकी राजलक्ष्मी को अपने ही आधीन करलेनेकी चेष्टा कररहे हैं। त-थापि प्रजात्मक स्त्रीरूप भोग्यशक्तिके साथ सब प्रकार की शोभा वा लक्ष्मीका विशेष सम्बन्ध है क्योंकि श्री लक्ष्मी शोभा प्रजा स्त्री इत्यादि सभी एक २ प्रकार के स्त्रीपनसे युक्त हैं सबमें स्त्रीत्वसामान्य एक है। इसी लिये मनुजीने अ० ९.में कहा है कि घरोंमें स्त्रियां ही लक्ष्मीरूप हैं। चाहें यों कहो कि शोभारूप लक्ष्मीजी

का आधार विशेषकर स्त्री ही है इस दशा में लक्ष्मी शोभामूलक सुखाधिक्य स्त्रीमें ही रहा। प्रजा वा स्त्रीके पालन पोषणार्थ भोजन वस्त्रादि देता हुआ अपना तत्त्व अन्यको देनेसे पुरुष नाम राजा वा भोक्ता शोभा वा शक्तिसे हीन होता है। इसी कारण विषयासक्तिसे भी पुरुष तेजहीन हो जाता है अभिप्राय यह कि प्रजाकी रक्षा के लिये उपाय करने वाला राजा शक्ति से हीन हो जाता है॥

रक्षा करने योग्य स्त्री आदि वा प्रजाकी रक्षा करने में परिश्रमसे पुरुष वा राजा के पीड़ित होने पर स्त्री वा प्रजाका ही दोष है क्योंकि उसीके कारण पुरुषको दुःख होता है। वहां कर लेने वा भोग्यके भोगने से राजा प्रजाका पीडक है वा पुरुष स्वार्थी है ऐसा दोष राजा वा पुरुषको लगाना वा कहना रक्ष्य वर्गका दूसरा दोष है। शोभाके अनुभवका सुख और प्राप्त करने योग्य वस्तुकी प्राप्तिका सुख रक्षाके योग्य स्त्री शक्तिके आधीन है। तथा परिश्रमकी अधिकतासे होनेवाला दुःख रक्षक पुरुषके आधीन है, रक्षक पुरुषका परिश्रम करनेसे तेज घटजाता है, तिससे सिद्ध हुआ कि स्त्री रूप

भोग्य प्रधान रक्ष्यवर्ग ही भोक्ता पुरुष को ठगने वा प्रपञ्चमें गिरानेके लिये प्रवृत्त हुआ है इसीसे पुरुषको वह त्याज्य है इस प्रकार यहां भोग्य प्रधान स्त्री वा प्रजाकी निन्दामें तात्पर्य है॥

अर्थात् रक्षक भोक्तृवर्गका प्रतिनिधि ब्रह्मा ऋत्विज् इस मन्त्रके द्वारा भोग्य तथा रक्ष्य वर्गको दोष युक्त वा दुःखदायी ठहराता है सो माया और ब्रह्म दोनोंके दोष युक्त वा निर्दोष होने के विवेचन करने पर वास्तवमें पौरुषांश निर्दोष और माया ही दोष युक्त ठहरती है। इस पूर्वपक्षका अगले मन्त्रमें राजमहिषीकी ओरसे उत्तर पक्ष कहा जायगा॥ १०॥

मातःचतेपिताचतेऽग्रेवृक्षस्यक्रीडतः।
विवक्षतइवतेमुखंब्रह्मन्मात्वंवदोबहु:११

अ०—महिषी ब्रह्माणं प्रत्याह—हे ब्रह्मन्! ते तव माता च ते तव पिता च वृक्षस्य छिद्यमानस्य नश्वरस्य राज्यस्याग्रे शोभायां लक्ष्मीप्राप्त्य एव क्रीडतः। कर्त्तुमकर्त्तु-

मन्यथा कर्तुं स्वतन्त्रस्य भोगासक्तस्य ज्ञातुः पुरुषस्यैव दोषो नतु जडप्रायस्य भोग्यस्येत्युक्तपूर्वम्। विवक्षतइव ते तव यन्मुखमस्ति तस्माद्बहु मा वदः। यद्वा द्वयोरेव समाने दोषे सिद्धेऽप्येकएवापराध्यतीति कथनं न युक्तम्। संयोगजन्यपदार्थानामुभयतो व्यपदेशदर्शनात्। माया-ब्रह्मात्मकसंयोगेन जायमानाः सर्वे दोषा यद्येकस्य संभवन्ति तदेतरस्यापि तथैव संभवन्ति तस्मादेकतरं दूषयितुं भाषणमनुचितम्॥ ११॥

भावार्थ--राजमहिषी ब्रह्माऋत्विजसे कहती है कि हे ब्रह्मन् (माता च ते पिता च ते) तुम्हारे माता और तुम्हारे पिता दोनों (अग्रे वृक्षस्य क्रीडतः) नाशवान् राज्यकी शोभा वा लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये खेल करते हैं नाम व्यर्थ ही अज्ञानी बालकोंके तुल्य खेलते हैं उसमें सार कुछ नहीं है यह बात (क्रीडतः) प-

दर्से जतायी है (विवक्षत इव ते मुखम्) बोलना चाहते हुए कासा तुम्हारा मुख है तिससे तुम्हारा विशेष कहना व्यर्थ है । पुरुष करने न करने वा अन्यथा करनेमें समर्थ स्वतन्त्र है वस भोगासक्त ज्ञाता पुरुषका ही दोष है । क्योंकि वही भोक्ता होनेसे सुख दुःख दोनोंका भोक्ता है, यदि भोग्यका दोष होता तो वह भोग्य नहीं रहता किन्तु भोक्ता वनजाता । जो कर्त्ता है वही भोक्ता है इससे कर्त्ता भोक्ता होनेसे पुरुष ही दोषी है । अथवा दोनोंका बराबर दोष हो तो भी एक ही अपराधी है ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि संयोगसे होने वाले वस्तु दोनोंके कहाते हैं जैसे पिता का पुत्र वैसे ही माताका पुत्र, वैसे यहां भी माया और ब्रह्मके संयोगसे होने वाले सब दोष जिस कायदे से एकके हो सकते हैं उसीप्रकार दूसरेके भी हो सकते हैं तिससे एकको दोष देनेका कथन अनुचित है । माया वा स्त्री अज्ञ होनेसे भी विशेष दोषभागिनी नहीं है॥११

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौभारंछ्हरन्निव।
अथास्यैमध्यमेधताछ्ः शीतेवातेपुनन्निव

अपिवा एतस्मात्। श्रीराष्ट्रं क्रामति यो ऽश्वमेधेन यजते ॥ १ ॥ ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति। श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति ॥ २ ॥ गिरौ भारᳪं हरन्निवेति। श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रᳪं संनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन्राष्ट्रमधिनिदधाति ॥ ३ ॥ अथास्यै मध्यमेधतामिति। श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यᳪं श्रियमेव राष्ट्रे मध्यतोऽन्नाद्यं दधाति ॥ ४ ॥ शीते वाते पुनन्निवेति। क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति ॥ ५ ॥ शतप० १३। २। ३॥

अ०—उद्गाता वावातां प्रत्याह—हे वावाते! त्वं गिरौ भारं हरन्निवैनां श्रियमूर्ध्वामुच्छ्रापयोन्नतां कुरु। त्वं च कामभोगाद्यासक्ता राजानमपि व्यसनासक्तं

करोषि तस्मात्तावकएव दोषः। अतो राज्यश्रिया उन्नतेरवनतेश्च त्वमेव कारणम्। अथ राज्यश्रिया अग्रभागस्योन्नत्यनन्तर मस्यै–अस्याः श्रियाः [षष्ठ्यर्थेऽत्र चतुर्थी] शीते वाते पुनान्निव मध्यं मध्यमो भागोऽप्येधतां वर्द्धतां। धर्मार्थकाममोक्षरूपपुरुषार्थचतुष्टयस्य यथावकाशं यथावसरमुन्नतिकरणमेव राज्याग्रभागस्योन्नतिरस्ति। विशेषेण धर्मार्थकामानामेवोन्नतिर्मध्यमाऽर्थकामानामेवोन्नतिरधमेति॥१२॥

शतपथका भावार्थ–अश्वमेध यज्ञमें करोड़ों रुपयोंका खर्च होने से अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाकी लक्ष्मी विशेष कर प्रजावर्गमें चलीजाती है। उसकी पर्वत पर बलपूर्वक बोझा लेजाने के तुल्य परस्पर एकता द्वारा सिद्ध हुए प्रजाके बलसे उन्नति करनी चाहिये। राज्य का गौरव राजलक्ष्मी पर ही निर्भर है इससे ही लक्ष्मी की अवनतिमें राज्यका गौरव घटजाता है। इसलिये

सिद्ध हुआ कि लक्ष्मीका अटल स्थायी होना वा विशेष रूपसे संचित करना राज्योन्नतिका मूल हेतु है। राज्य ठीक वही है कि जो सब प्रकारकी उत्तमोत्तम लक्ष्मी को राजामें स्थापित करे। लक्ष्मी ही राज्यका मध्य वा केन्द्रभाग है। अच्छा भोजनादिका सामान भी राज्य में लक्ष्मीको मध्यस्थ करता नाम केन्द्ररूप बनाता है। संस्कृतमें जो यह जनश्रुति कहावत चली है कि [द्रव्येण सर्वे वशाः] जिसके अधिकार में द्रव्य हो उस के आधीन सभी हो जाते हैं। और बहुत मनुष्यों पर अधिकार होना ही राज्य कहाता है इससे सिद्ध हुआ कि लक्ष्मीकी विशेष वृद्धि व्यापारादि द्वारा करना भी राज्यका कारण हो सकता है। राज्यमें शीतल वायुका प्रचार नाम शान्तिकी अधिकता होना यही है कि क्षेम नाम ठीक २ प्रजाकी रक्षा करे अर्थात् प्रजा पर अधिक कर राजा न लगावे। उसे ऐसा पादाक्रान्त न करे कि जिससे बहुत दुःखभागिनी होकर राजाकी अशुभ चिन्तक होजावे। प्रजाके सब अधिकारोंमें राजा हस्तक्षेप न करे। जब राजा प्रजामें वैमनस्य होता है तब राजाको भी राजसुख प्राप्त नहीं होता। इससे अपने

राज्यको चिरस्थायी चाहने वाला राजा सम्यक् रक्षा द्वारा प्रजाको प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखनेकी पूरी चिन्ता रक्खे ॥

भा०--उद्गाता ऋत्विज् वावाता नामक राजपत्नीसे कहता है कि (गिरौ भारथंहरन्निव) पर्वत पर बोझा लेजानेके तुल्य बड़े परिश्रमसे (एनामूर्ध्वामुच्छ्रापय) इस राजलक्ष्मीको तुम उन्नति युक्त करो । क्योंकि तुम स्त्रियोंके कारण उन्नति नहीं होती तुम स्त्री जन काम भोगादिमें आसक्त हुए राजाको भी व्यसनोंमें फंसादेती हो इससे तुम लोगोंका यही दोष है । राजलक्ष्मीकी उन्नति अवनति दोनोंका कारण तुम ही हो (अथ) और राजलक्ष्मीके अग्रभागकी उन्नति होनेके वाद (अस्यै) इस राजलक्ष्मीका (शीते वाते पुनन्निव) क्षेम नाम रक्षा शान्तिरूप वायुमें पवित्र होनेके तुल्य (मध्यमेधताम्) मध्यकोटिस्थ राजलक्ष्मीकी उन्नति करनी चाहिये । धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चार प्रकारके पुरुषार्थको यथावसर ठीक २ उन्नत करना ही राज्यके अग्रभागकी उन्नति है क्योंकि इसके अन्तर्गत सभी अंश

जानाते हैं। विशेष कर धर्म अर्थ और काम की उन्नति मध्यम है तथा केवल अर्थ और कामकी उन्नति करना उन्नतिका निकृष्ट दशा है ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारं हरन्निव ।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव १३

अ०=अत्रातोद्‌गातारं प्रत्याह-हे उद्‌गातः! गिरौ भारं हरन्निवैनं राजानमूर्ध्वमुच्छ्रयतात्। अर्थात् भवादृशानां धार्मिकजितेन्द्रियब्राह्मणानामनुमत्या राजानो जितेन्द्रिया भूत्वा स्वातन्त्र्येण सम्यग् राज्योन्नतिं कर्त्तुं समर्थाः संभवन्ति नतु ते स्त्रीणामनुमतिं मन्यन्ते नच स्त्रियएव पुरुषान् विषयासक्तान् कुर्वतेऽपितु लीलावतीनां सहजाः स्वभावास्तएवमूढस्यहृदिस्फुरन्ति । रागोनलिन्याहिनिसर्गसिद्धस्तत्रभ्रमत्येवमुधाषडङ्घ्रिः॥ पुरुषाः स्वयमेव विषयभो-

गाभिलाषवासनाग्रागुराकृष्टा अधःपतन्ति तस्मादेव स्वस्य गेहस्यापि प्रबन्धं कर्त्तुं न शक्नुवन्ति सर्वदेशस्य तु का कथा तस्मात्पुरुषाणामेवापराधो नत्वस्माकमबलानाम्। यदि राजपुरोहितादयः सर्वे राजसदस्या अमात्यादयश्च राज्ञश्चित्तं सदाचारपरं राज्योन्नतिपरं देशोन्नतिपरं च कर्त्तुं सदैवोपदिशेयुस्तदा राजनैतिकविषयोन्नतिः सम्यक् संभाव्या नोचेदेवं भवद्विधपुरुषाणामेवापराधः। उक्तप्रकारेण स्वप्रान्ते राज्योन्नतौ सत्यामथास्य राजधर्मस्य मध्यं भिन्नप्रान्तेषु विजातीयजनेषु च राज्यव्यवस्थापनमेजतु शीतेवाते पुनर्न्निव चेष्टताम् ॥१३॥

भाषार्थः--अब वावाता नामक राजपत्नी उद्गाता

से कहती है कि हे उद्गातः। (गिरौ भारं हरन्निव) पर्वत पर बोझा ले चलनेके तुल्य बड़े परिश्रमसे (एनमूर्ध्वमुच्छ्रयतात्) इस राजाको उन्नति शील करो। अर्थात् आप जैसे धर्मात्मा विद्वान् ब्राह्मणोंकी अनुमतिसे राजा लोग जितेन्द्रिय होकर स्वतन्त्रतासे सम्यक् राज्यकी उन्नति कर सकते हैं। राजादि लोग हम जैसी स्त्रियोंकी अनुमति नहीं मानते इससे यह कहना नहीं बनता कि स्त्रियां ही पुरुषोंको विषयासक्त किया करतीं हैं किन्तु सत्य बात तो यह है कि " जैसे कमलिनी भ्रमरको अपने पर आसक्त करनेके लिये समझ पूर्वक वैसा स्वरूप नहीं बनाती किन्तु उसमें स्वाभाविक ही वैसा राग होता है जिसे देख २ भ्रमर उस नलिनी पर आसक्त हो जाता है इसीके अनुसार लीलावती स्त्रियोंके स्वाभाविक हाव भाव चेष्टाओंको अपने रिझाने के लिये मानकर पुरुष स्त्रियों पर मोहित हो जाते हैं " इसीसे राज्यादिकी उन्नति नहीं करपाते। अर्थात् पुरुष स्वयमेव विषय भोगेच्छा रूप कामना जालमें फंसेहुए अधोगति पाते हैं इसीसे वे जब अपने घर का ही प्रबन्ध नहीं कर सकते तब बड़ा राजप्रबन्ध करलेना तो दूर है तिससे पुरुषोंका ही अपराध है किन्तु

हम अबलाओंका नहीं । यदि सब राजपुरोहितादि तथा राजसभाके सब राजमन्त्री आदि राजाके चित्तको राज्य वा देशकी उन्नतिमें तथा सदाचारमें तत्पर करना चाहें तो सम्यक् राजनैतिक विचारोंकी उन्नति हो सकती है । और ऐसा नहीं करते तो आप सरीखे पुरुषोंका ही अपराध है । उक्त प्रकारसे स्वप्रान्तमें राज्योन्नति होजाने पर (अथ) अब (शीते वाते पुनन्निव) सब उपद्रवों की शान्तिरूप शीतल वायुसे सब किसी के प्रसन्न संतुष्ट होनेके निमित्त (अस्य मध्यमेजतु) इस राजधर्मका मध्यांश उन्नत हो; अर्थात् भिन्न २ प्रान्तों में विजातीय मनुष्यों पर राज्यव्यवस्था करनेकी चेष्टा होवे । अर्थात् व्यसनोंसे बचकर अपने देशमें राज्यव्यवस्था ठीक उन्नत करनेके पश्चात् अन्यदेशमें मध्यकोटि के राज्यका प्रबन्ध करना पुरुषोंका ही काम है न करें तो उन्हींका दोष है स्त्रियोंका कुछ दोष नहीं है ॥१३॥

यदस्या अंहुभेद्याः कृधुस्थूलमुपातसत्।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १४ ॥

अ०—होता परिवृक्तामाह—अंहुर्गति—ग॰मनशक्तेर्भेदो विदारणमनया साऽअंहुभेदो तस्याः पुरुषशक्तिनाशिकाया अस्याः स्त्रियाः क्षुधु ह्रस्वं स्थूलं चापराधं यदि पुरुष उपातसत्प्रकाशयति तदा गोशफेऽत्यल्पजलाशये शकुलौ मत्स्यौ यथा दुःखितौ भवतस्यथाऽस्याः स्त्रीजातेर्मुष्कौ शिक्षिताशिक्षितौ द्वावपि संघाताविजतो दुःखितौ भवतः । यद्वा यद्यदाऽस्या राजशक्तिनिरोधिन्याः प्रजायाः राजा सूक्ष्मं स्थूलं च दोषं प्रकाशयति तदापि गोशफे शकुलाविवास्याः प्राज्ञमूर्खौ द्वावेव संघातावजतः । अयं च स्त्रीत्वप्रधानायाः प्रजायाः स्त्रीशक्तेरेव वा दोषो नतु पुरुषस्य गत्यर्थादहिधातोरौणादिकउः प्रत्ययः । मुष्कपदं संघातविशेषबोधकं कोशेषु दृश्यते ॥

भा०-चलचित्तत्वादयो दोषाःस्त्रीषु स्वाभाविकास्तेचाल्पपुंस्त्वकजनेष्वपि सन्त्येव तेषामपि स्त्रीपक्षे संख्यातत्वात् तद्दोष निवारणाय यदा पुरुषा यतन्ते तदा ताः सर्वा योषितो दुःखाकुला जायन्ते अतो योषिदपेक्षया पुरुषो निर्दोषो योषित्सदोषेति वेदादिसर्वशास्त्राशयेनावसीयते ॥१४॥

भावार्थ-प्रधान होता नामक ऋग्वेदी ऋत्विज् परिवृक्ता नामक राजपत्नीसे कहता है कि हे परिवृक्ते! (अंहुभेद्याः) गमनादि रूप पुरुषशक्ति को विदीर्ण वा नष्ट करने वाली (अस्याः) इस स्त्री जातिके (यत्) जब (कृधु, स्थूलम्) छोटे बड़े दोषको पुरुष (उपातसत) कहता वा प्रकाशित करता है तब (गोशफेशकुलाविव) जैसे गोखुरके तुल्य बहुत छोटे वा थोड़े जलाशयमें मछलियां घबराती वा दुःख पाती हैं वैसे (अस्या मुष्कावदेजतः) इस स्त्री जाति के शिक्षित अशिक्षित दोनों ही समुदाय घबराते हैं और वैसी दशा में स्वयं अपराधी होने पर भी स्वभाव से ही

पुरुषोंको दोष दिया करती हैं। अथवा जब इस राजशक्तिकी विरोधिनी प्रजाका छोटा बड़ा दोष राजा कहता है तब थोड़े जलमें मछलियों के तुल्य प्रजा के विद्वान् मूर्ख दोनों शुष्क नाम संघात घबराते हैं। यह स्त्रीत्व प्रधान प्रजाका वा स्त्री जातिका ही दोष है पुरुषका वा राजा का कुछ नहीं है॥

भा०—चित्तका चलायमान होना आदि दोष स्त्रियों में स्वाभाविक है ये दोष थोड़ी वा निर्बल पुरुषशक्ति वाले पुरुषोंमें भी वैसे ही होते हैं क्योंकि वे भी स्त्री कोटिमें गिने जावेंगे। उन स्त्रियोंके दोषोंकी निवृत्ति के लिये जब पुरुष उपाय करते हैं तब वे सब स्त्रियां दुःखोंसे व्याकुल होती हैं। इससे सिद्ध हुआ कि स्त्री की अपेक्षासे पुरुष निर्दोष तथा स्त्री सदोष है-वेदादि सब शास्त्रों का यही अभिप्राय निश्चित होता है॥१४॥

यद्देवासोललामगुं प्राविष्टीमिनमाविषुः। सक्थ्नादेदिश्यतेनारी सत्यस्याक्षिभुवोयथा॥ १५॥

अ०-परिवृक्ता-होतारमाह। लल-ईप्सायाम्। लल्यत ईप्स्यते तल्ललं सुखं तदमति गमयति प्रापयतीति ललामं प्राधान्यं प्रभावो वा तत्प्राधान्यं प्रभावं वा गच्छति प्राप्नोतीति ललामगुः पुरुषः। ष्टीम क्लेदने कुरादौ। विशेषेण स्तीमनं विष्टीमः। घञि रूपमेतत्। विष्टीमोऽस्यास्तीति विष्टीमी मृदुस्तम्। यद्ध यदा देवासो देवाः प्रमादपरा इन्द्रियशक्तयो मोदकाः कामादयो वा विष्टीमिनं ललामगुं पुरुषं प्राविशुः प्रविशन्ति तदा पुरुषा एव दोषभाजो वेश्यादिरताः कामक्रोधलोभग्रस्ता विशेषेण दूषिता भवन्ति। स्त्री च सक्थना ऊरुणा देदिश्यते निर्दिश्यते लक्ष्यते। न कदापि कमपि सक्थि दर्शयति।

लज्जापरायणा योषितो सदा सक्थ्याद्यङ्गा-
नि सुरक्षितानि गोपयन्ति । अक्षिभ्यां भ-
वतीत्यक्षिभु प्रत्यक्षं यथा सत्यं भवति ।
तथैव सक्थ्याद्यङ्गानुद्घाटनोपलक्षितेन प्र-
त्यक्षप्रमाणेनैव स्त्रीणां सलज्जत्वं सदाचार-
परत्वं च सिद्धम् । तस्मान्नापराध्यन्ति
योषितः ॥

भा०=अहंकारः सर्वानर्थहेतुः स च स-
र्गारम्भादेव विशेषेण पुरुषसंस्थः सिद्धः ।
अहंकाराधिक्यादपि पुरुषाः सबलास्तद-
ल्पत्वादेव वयमबलाः प्रसिद्धास्तस्मान्नैस-
र्गिकः सिद्धान्तो यत्पुरुषाएवाहङ्काराधिक्या-
त्सबलाः सन्तः कामक्रोधलोभसंबद्धकृत्येषु
रममाणा विशेषेण दोषभाजः संभवन्ति ।
न तथा वयमबला दोषभाजइति ॥१५॥

भावार्थः-लल नाम इच्छा है उसको प्राप्त कराने वाला लल-अम ललाम प्रधानत्व वा प्रभाव कहाता है उस प्रधानत्व वा प्रभावको प्राप्त होने वाला पुरुष ललामगु कहाता है। कोमलता रूप विष्टीम जिसमें हो वह मृदु पुरुष विष्टीमी कहाता है (मत) मद (देवासः) प्रमादमें तत्पर इन्द्रियोंकी शक्तिरूप वा मोह हर्ष कराने वाले कामादि रूप देव (विष्टीमिनम्) बाल्यावस्थासे कोमल दयालु (ललामगुम्) प्रधान वा प्रभावशाली पुरुषको (प्राविशुः) प्रवेश करते हैं तब पुरुष ही दोषी हो जाते हैं वेश्यादि के साथ लगके काम क्रोध लोभ से ग्रस्त हुये विशेष कर दूषित होते हैं। प्रयोजन यह है कि यद्यपि बाल्यावस्थासे सभी स्त्री पुरुष शुद्ध कोमल होते हैं परन्तु तथापि युवावस्था आते ही विषयानन्द में फंसाने वाले कामादि रूप देवों का प्रवेश होते ही पुरुषों में अनेक दोष प्रकट हो जाते हैं (सक्थ्ना देदिश्यते नारी) और नारी नाम स्त्रीजाति अपनी जांघसे, निर्दोष लक्षित होती है अर्थात कभी किसी को अपनी जांघ तक भी नहीं दिखाती। लज्जा में परायण हुई प्रायः सभी स्त्रियां अपने जंघादि अंगों

को सदा सुरक्षित रखती ढांपे रहती हैं परन्तु पुरुषों के जंघा खुले भी दीखते हैं। (सत्यस्याक्षिभुवो यथा) जैसे आंखोंसे देखने द्वारा होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान सदा सत्य ही होता है वैसे ही जांघ आदि अङ्गोंको न उघारने रूप प्रत्यक्ष उपलक्षणसे स्त्रियोंका विशेष लज्जायुक्त होना सिद्ध है इससे सिद्ध हुआ कि स्त्रीजाति विशेष दूषित नहीं है॥

भावार्थ—अहंकारकी अधिकता वा प्रबलता ही सब अनर्थोंका हेतु है वह अहंकार सृष्टि के आरम्भसे ही विशेष कर पुरुषमें रहता है। उस अहंकारकी अधिकतासे भी पुरुष विशेष बलवान् होते और अहंकारके कम होने से ही हम स्त्रियां अबला कहाती हैं स्त्रियोंके अबला होने से ही पुरुषोंका सबल होना सिद्ध है। अपराध वा पाप दोषोंके लिये भी बल तथा साहस की आवश्यकता है। अहंकार और बलकी अधिकतासे ही चोरी का काम प्रायः पुरुषोंमें ही दीखता है तिससे सिद्ध हुआ कि पुरुष ही अहंकारी होनेसे बलवान् हुए काम क्रोध लोभ सम्बन्धी कामोंमें तत्पर होने से विशेषकर दोषभागी होते हैं वैसे अहंकार और बलके कम होने से हम स्त्रियां विशेष दोष युक्त नहीं॥ १५॥

यद्धरिणोयवमत्ति नपुष्टंपशुमन्यते ॥
शूद्रायदर्यजारा नपोषायधनायति॥१६॥

शतपथे-यद्धरिणोयवमत्तीति।विड्वैयवोराष्ट्रं हरिणो विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्मा द्राष्ट्री विशमत्ति।न पुष्टं पशु मन्यतऽइति तस्माद्राजा पशून्न पुष्यति शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायतीति तस्माद्वैशीपुत्रं नाभिषिञ्चति ॥ १३ । २ । ३ । ८ ॥

अ०-क्षत्ता पालागलीमाह-हरिणः प्रजास्वहरणशीलो राजा यद्यवमत्ति यत्प्रजा स्वमादत्ते स च प्रजारक्षणव्यग्राय तदादत्ते एतेन कर्मणा प्रजाजना वदन्ति राजा पशुवत्पराधीनानस्मान्न पुष्यति न रक्षति। शूद्रा स्त्री यदा-अर्यजारा-अर्यो वैश्यो जारोऽस्याइति तादृशी भवति तदा पोषणाय न धनायति पुष्ट्यर्थं धनं नेच्छ-

ति। अर्थात्स्वयं व्यभिचारदोषेण दूषिता सत्यपि पुरुषमेवदोषयुक्तं मन्यते वदति च यथाऽयंजारा शूद्रा पुरुषमेव दोषयुक्तं मन्यते तथैव प्रजारक्षार्थमेव करमाददानं राजानं प्रजाअपि दोषयुक्तं वदन्ति। अयंच स्त्रीशक्तेरेव दोषः। तथा च मनुनापि द्वितीयाध्यायउक्तम्।

स्वभावएषनारीणां नराणामिहदूषणम्।
अतोऽर्थान्नप्रमाद्यन्ति प्रमदासुविपश्चितः२१३

अतः सिद्धमेतद्यत्स्वभावत एव प्रमदाः पुरुषाणां दूषणं वदन्ति तस्मात्ताएव दूषिताः॥ १६॥

अ०—हत्ता नामक ऋत्विज् पालागली नामक राजपत्नीसे कहता है कि (हरिणो यद्यवमत्ति) कारलेने रूपसे प्रजाका धन हरने वाला राजा जो प्रजासे कर लेताहै वह प्रजा की रक्षामें होने वाले खर्चके लिये ही विशेषकर लेता है तो भी इस कर्मसे प्रजाके लोग कहते

हैं कि राजा पशुवत् पराधीन हम लोगों का ठीक २ पालन पोषण नहीं करता। (यदयंजारा शूद्रा) अर्य नाम वैश्य है जार जिसका ऐसी शूद्रा स्त्री जब व्यभिचारिणी होती है तब (न पोषाय धनायति) पुष्टि के लिये धन नहीं चाहती । अर्थात् स्वयं व्यभिचार दोषसे दूषित होती हुई भी पुरुष को ही दोषयुक्त मानती और कहती है। जैसे अर्यजारा शूद्रा पुरुषको ही दोषयुक्त मानती है वैसे ही प्रजा की रक्षार्थ ही कर लेने वाले राजा को प्रजा भी दोषयुक्त कहती है यह स्त्री शक्तिका ही विशेष दोष है। सो मनुजी ने भी अ० २ श्लो० २१३ में कह दिया है कि "स्त्रियोंका यह स्वभाव ही है कि वे इस संसारी दशामें पुरुषोंका ही दोष कहती मानती हैं इस कारण विद्वान् लोग इन प्रमाद युक्त स्त्रियों में विषेप कर नहीं फंसते।" इससे यह सिद्ध हुआ कि स्त्रियां जो स्वभाव से ही पुरुषोंका दोष कहती हैं इससे वेही विशेष कर दूषित हैं। चाहें यों कहो कि सब संसारके दोषयुक्त होने पर अपने दोष न देखने तथा परनिन्दा करने वाला विशेष दोषी है ॥ १६ ॥

यद्धरिणोयवमत्ति नपुष्टंवहुमन्यते ।
शूद्रोयदर्यायैजारो नपोषमनुमन्यते ॥१७॥

अ०—पालागली क्षत्तारमाह=यद्यदा ह-
रिणो राजा प्रजाया यवादिधान्यमादत्ते
तदा स प्रजावर्गं पुष्टं वहु न मन्यतेऽर्था-
द्राजा जानात्येवादानमप्रियकरं दानं च
प्रियकारकम् । तथा=नानुपहृत्य भूतान्यु-
पभोगः संभवतीति राजाचेतरसाधारण
जनापेक्षया श्रेष्ठतममुपभोगं प्रजावर्गादे-
वाददानो दोष भाग्भवत्येव । अर्यायै=आ-
र्यायाः [षष्ठ्यर्थेऽत्र चतुर्थी] जारो यद्द यदा
शूद्रो भवति तदा पोषं पुष्टिं नानुमन्यते ।
अपितु नीचपुरुषेणोत्तमस्त्रियाः समागमा-
त्स्वराएत्र हानिर्भवति । यदि वैश्यजनः
शूद्रकन्यामुद्वाहयेत्तदा नैतद्विशिष्टमनुचि-

तमपित्वनुलोमत्वाद्धर्मशास्त्रानुकूलमप्यस्ति तत्र शूद्रायाः प्रमदाया अल्पो दोषो यत्र तु शूद्रः पुरुषः स्वत उत्कृष्टया वैश्यया व्यभिचरति तत्र शूद्रपुरुषस्यैव दोषाधिक्यम्। एवं दृष्टान्तद्वयेऽपि पुरुषस्यैव दोषाधिक्यं न च तावत् स्त्रिया दोष इति शम् ॥१७॥

भाषार्थः-अब पालागली राजपत्नी क्षत्ताऽऽत्विज से कहती है कि (यद्धरिणो यवमत्ति) जब राजा प्रजाके यवादि धान्यको ग्रहण करता नाम लेता है तब वह प्रजावर्गको (पुष्टं बहु न मन्यते) बहुत पुष्ट नहीं मानता अर्थात् राजा जानता है कि किसी से कुछ लेना प्रीति घटाने वाला है। जिससे कुछ लिया जाता है उसे कुछ दुःख होता है यह तो मनुजी ने कहा और योगभाष्यमें लिखा है कि " अन्य प्राणियोंको दुःख पहुंचाये विना उत्तम भोग किसी को कभी प्राप्त नहीं होता" इसी कारण अन्यसाधारण जनोंकी अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ भोग प्रजावर्गसे लेता हुआ राजा दोषभागी होता है। (अर्यायै जारो यद् शूद्रः) वैश्य स्त्रीके साथ

गारकर्म व्यभिचार करने वाला जब शूद्र होता है तब (न पोषमनुमन्यते) वह शूद्र उस कर्मसे किसीके धर्म वा गौरवकी पुष्टि नहीं मानता है अर्थात् यह नहीं मानता कि वैश्य स्त्रीकी पुष्टि वा गौरव रक्षा होगी किन्तु वह यह तो अवश्य जानता है कि उत्तम वर्णकी स्त्री का नीच पुरुषके साथ समागम होनेसे स्त्रीकी ही हानि होती है। यदि वैश्य पुरुष शूद्र कन्याके साथ विवाह करले तो यह बहुत अनुचित वा बड़ा दोष नहीं है किन्तु अनुलोम होनेसे वह विवाह धर्मशास्त्रके अनुकूल भी है वहां शूद्र स्त्रीका थोड़ा दोष है। परन्तु जहां शूद्र पुरुष अपनेसे ऊंचे वैश्यवर्णकी स्त्रीसे व्यभिचार करता है वहां शूद्र पुरुषका ही दोष अधिक है उतना दोष स्त्रीका नहीं है यह बात सिद्ध हो गयी है। शुभाशुभ कर्म करनेमें पुरुष स्वाधीन और तदपेक्षया स्त्री कर्म करनेमें पराधीन है। पराधीन बालकके तुल्य स्त्री का अल्प दोष युक्त होना और पुरुषका बहुदोषी होना सिद्ध हुआ॥ १७॥

हमारे पाठकोंको स्मरण होगा कि अश्वमेध यज्ञ सम्बन्धी शुक्ल यजुःसंहिताके १७ मंत्रोंका अर्थ लिखनेका

जो विचार हमने किया था सो यहां तक समाप्त हो चुका। इन मंत्रोंका व्याख्यान देखनेसे आर्यसमाजियों ने जो ग्लानि पैदा करादी थी वह अवश्य मिट जा-येगी और वेद मंत्रोंसे कुछ उपकारी उपदेश पाठकोंको अवश्य होजायगा॥

बृहदारण्यकोपनिषद्के आरम्भके प्रथमब्राह्मणकी दो कण्डिका यहां लिखते हैं इनमें विराडात्मक प्रजा-पति का ही नाम अश्व रक्खा है॥

ओ३म्--उषा वाऽअश्वस्य मेध्यस्य शिरः सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सर आत्मा अश्वस्य मेध्यस्य। द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवी पाजस्यम्। दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पर्शव ऋत-वोऽङ्गानि मासाश्चार्द्धमासाश्च पर्वाण्यहो रात्राणि प्रतिष्ठानक्षत्राण्यस्थीनि नभोमां-सानि। ऊवध्यं सिकताः सिन्धवो गुदा यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वन-

रुपतयश्च लोमानि। उद्यन् पूर्वार्द्धो निम्लो-
चन जघनार्द्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते य-
द्विधूनते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति
वागेवास्य वाक् ॥१॥ अहर्वाऽश्वं पुरस्ता-
न्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी
रात्रिरेनम्पश्चान्महिमान्वजायत तस्या-
परे समुद्रे योनिरेतौ वाऽश्वं महिमाना-
वभितः संबभूवतुर्हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी
गन्धर्वानर्वा असुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र
एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः ॥ २ ॥ इति
प्रथमं ब्राह्मणम् ॥

भावार्थः—यज्ञके योग्य अश्व (घोड़े) का शिर उषःकाल है, सूर्य-चक्षु, वायु प्राण, जाठराग्नि फैला हुआ मुख सं-वत्सर शरीर नाक उदरा, द्युलोक पीठ, अन्तरिक्षलोक पेट, पृथिवी पादस्थानी पूर्वादि दिशा बगलें, अवान्तर दिशा पसुलियां, छः ऋतु छः अङ्ग (चार हाथ पांव,

दो शिर और मदरा) १२ महीने तथा २४ पक्ष मव ३६ पर्वनाम सन्धिस्थान, एक एक वर्षके अहोरात्र देव एक महीनेके पितरोंके तथा आठ पहरके मनुष्योंके ये देव पैत्र और मानुष तीनों प्रकारके दिन रात प्रतिष्ठा नाम अश्व के पग हैं। नक्षत्र अश्वकी हड्डियां, आकाशस्थ मेघ ही अश्वका मांस, ऊवध्य नाम खाया हुआ अधपचा घासादि बालुरूप नदियां ही गुदा रूप पर्वत ही यकृत् प्लीहारूप हैं ओषधि वनस्पति ही रोमरूप हैं। मध्यान्हसे पहिले सूर्यका ऊपरको चढ़ना अश्वका पूर्वार्द्ध नाम नाभि से ऊपरका भाग है मध्यान्हसे सन्ध्या तक अश्वका पिछाड़ी का भाग है, विद्युतका चमकाना ही अश्वका जम्भाई लेना है, जो बादलोंका गर्जना है वही अश्वका शरीर कंपाना है मेघका वर्षना ही अश्वका पेशाब करना है, संसारमें नाना प्रकारका शब्द ही अश्वकी वाणी है ॥ १॥

अश्वमेध यज्ञमें अश्वके पूर्व पश्चिम दोनों ओर सुवर्ण और चांदीके चमसाकार दो ग्रह स्थापित किये जाते हैं उनमें दिनरूप सुवर्णका है यह इस कालात्मक प्रजापति वा विराट्के पूर्व भागमें एक महिमा अश्वको लक्षित करके हुई है। उस दिन रूप ग्रहके स्थापनका स्थान

पूर्व समुद्र है। अश्वसे पश्चिमकी ओरका ग्रह रात्रि रूप महिमा अश्वको लक्षित करके हुई है, उस राजत ग्रहके स्थापनका स्थान पश्चिम समुद्र है ये सौवर्ण राजत ग्रह स्थानी दिनरात्रि रूप दो महिमा अश्वके दोनों ओर पूर्व पश्चिम की ओर हुई हैं। कालात्मक प्रजापति वा अश्वने अनेक रूप धारण किये हैं। हय, वाजी, अर्वा, अश्व ये घोड़ोंके अवान्तर भेद हैं॥

सबसे अधिक तेज सवारीका नाम अश्व है उसके अनेक रूप हैं। देवलोकमें जहां स्थूल पांच भूतोंकी सृष्टि नहीं है वहां सूक्ष्म भूतोंका अश्वाकृति वाहन हय कहाता है। इससे मर्त्यलोकमें हय पद घोड़ेका नाम नहीं आना चाहिये और कहीं आवे तो उसको गौण प्रयोग हयवत्प्रशंसार्थ मानना चाहिये। उच्चैःश्रवा आदि नामक देवोंके हय अश्वाकृति सूक्ष्मतत्व निर्मित वाहन हैं वेही देवोंकी सवारी हैं। शीघ्रगामी विमानादि भी अश्व वा हय कहे जासकते हैं। गन्धर्वलोकमें गन्धर्वोंके अश्वात्मक वाहन वाजी कहाते हैं, असुरलोकमें असुरोंकी सवारी अर्वा कहाती है। और मनुष्यलोकमें वही अश्व

कहाता है। इस कालात्मक प्रजापति रूप अश्वका नाम परमात्मा ही बन्धु नाम बांधने वाला है और परमात्मा ही कारण है इसलिये यह कालात्मक प्रजापति अश्व शुद्ध और सनातन है ॥ २ ॥

अब शोचनेका स्थान है कि जिस अश्व का सूर्य चक्षु, वायु प्राण तथा अग्निमुख है ऐसे अश्वका पूजन वा आराधन जिस यज्ञ में मानुष अश्वके द्वारा किया जाता है वही अश्वमेध यज्ञ है। इस लिये अश्वमेध यज्ञ में जो भाव आधुनिक समाजियों ने दिखाकर वेद से ही घृणा कराने का उद्योग किया था सो वहां कामवासना पूर्वक राजपत्नीका घोड़के साथ कुछ भी व्यवहार नहीं है यह बात अबतक सम्यक् सिद्ध करदी गयी है। इस प्रकरण में हम यह भी पहिले लिख चुके हैं कि "शतपथ १२। २। ३। ९ में लिखा है कि—उन के प्राणोंको वाधा पहुंचती है कि जो यज्ञमें अपूत वाणी बोलते हैं। इस लिये (दधिक्राव्णः०) मन्त्र पढ़के उस अपूत वाणी बोलनेका प्रायश्चित्त करें। शतपथ के इस लिखनेसे साफ प्रतीत होता है कि ऋत्विजोंने इससेपूर्व अश्वमेध में कुछ अपूत वाणी अवश्य कही है। उसी अपूत वाणीको वेदभाष्यकार महीधरने अश्लीलभाषण कहा है॥

हम यह भी लिखचुके हैं कि यज्ञके समय अध्वर्यु आदि ऋत्विजों और राजपत्नियों का जो संवाद होता है वहां दोनों ओर से केवल मूल मंत्र बोले जाते हैं। और मूल मंत्रों से वसा बोध किसी को नहीं हो सकता कि जैसा महीधरकृत संस्कृतभाष्य से तथा स्वा० दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में छपे उन मन्त्रोंके भाषार्थ से अश्लील जान पड़ता है। वहां यज्ञ के समय किन्हीं भी मंत्रोंका टीका नहीं किया जाता और न करना चाहिये। इसी लिये शतपथ ब्रा० में उन मंत्रों का अपूत वा अश्लील कुछ भी व्याख्यान नहीं दिखलाया गया किन्तु राजधर्म सम्बन्ध से कुछ २ व्याख्यान अवश्य दिखाया है जिस को हम उन २ मंत्रों पर लिख चुके हैं ब्राह्मण ग्रन्थकारके इस इंगित से जान पड़ता है कि श्रुति भाग कर्त्ताको यह कदापि अभीष्ट नहीं था कि इन मन्त्रों का अपूत वा अश्लीलार्थ किसी भाषा द्वारा प्रकट किया जाय इसी लिये वेदभाष्यकार महीधर की भी इतनी भूल हम अवश्य मानते हैं कि जो उन २ मन्त्रोंके अश्लीलार्थ का व्याख्यान संस्कृत में प्रकट किया। और वेद में कुछ अपूत वाणी इस अवसर में अवश्य होती है सो

कदाचित् वही महीधरोक्त अश्लील हो इस अंश पर ध्यान देने से महीधर का विशेष दोष सिद्ध नहीं होता भाषामें न प्रकाशित करने योग्य विषयको भाषा द्वारा प्रकाशित करना आ०समाजियोंका बड़ा दोष अवश्य है ॥

अब हम इस विषय का उपसंहार करते हैं कि वेद का अगाध गम्भीराशय है उसका पार पा लेना मानुषी शक्ति से अशक्य है। इससे जो कुछ हमारी अल्प बुद्धि में आया सो लिखा गया है विशेष ध्यान इस बात पर देना चाहिये कि यज्ञोंमें दीक्षा होने के समय से ही पूर्ण ब्रह्मचर्य्य के नियमों से बद्ध रहना यजमान ऋत्विजों को लिखा गया है जिसमें काम क्रोध लोभ का सर्वथा परित्याग है। और कामासक्ति का जब यज्ञ में नाम नहीं तब वहां घोड़े आदि किसी के भी साथ मैथुन हो ही नहीं सकता, द्वितीय यह भी ध्यान रहे कि जीवित और मृत के साथ मैथुन रूप ग्राम्य धर्म हो सकना भी असम्भव है। इस लिये अश्वमेधमें वह दोष लेशमात्र भी नहीं जो आ० समाजियों ने प्रकट किया और ऐसी दशामें वेदका जो अभिप्राय हो सकता है सो हम लिख चुके हैं। इतिशम् ॥

उपयोगी पुस्तकोंका सूचीपत्र

ब्राह्मणसर्वस्व ६ भाग ७॥) अष्टादशस्मृति भा० टी० ३) भगवद्गीता भा०टी० २) अष्टाध्यायी सटीक २) गणरत्न-महोदधि १) दर्शपौर्णमासपद्धति १) इष्टिसंग्रह ॥) पञ्च-महायज्ञविधि ≈) त्रिकालसंध्या)॥ भोजनविधि)॥ हरिस्तोत्र भा०टी०)। शिवस्तोत्र भा०टी०)। आपस्त-म्बगृह्यसूत्र ॥) सतीधर्मसंग्रह ।) पतिव्रतामाहात्म्य ≡) भर्तृहरिकृतनीतिशतक भा०टी० ≡) भर्तृ० वैराग्यशतक भा०टी० ≡) भर्तृ० शृङ्गारशतक भा० टी० ≡) आर्यमत निराकरणप्रश्नावली ।) सत्यार्थप्रकाशसमीक्षा ≈) दया-नन्दलीला)॥ भजनपचासा -) भजनसंग्रह ≈) सज्जनवि-नोद -) भजनपचीसी)। भजनवीसी)। भजनषोडसा)। सनातनहिन्दूधर्मव्याख्यानदर्पण ५४ व्याख्यान ३) द-यानन्दचरित्र)॥ मुक्तिप्रकाश -) वैदिकाभासबोध)॥ ईसाईमतमर्दन)। दुनियांकीरीति)। हनुमानचाली-सा)॥ रामचालीसा)।

विशेष हाल बड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखिये ॥

पुस्तक मिलनेका पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा ॥